CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान

सुषमा जैन

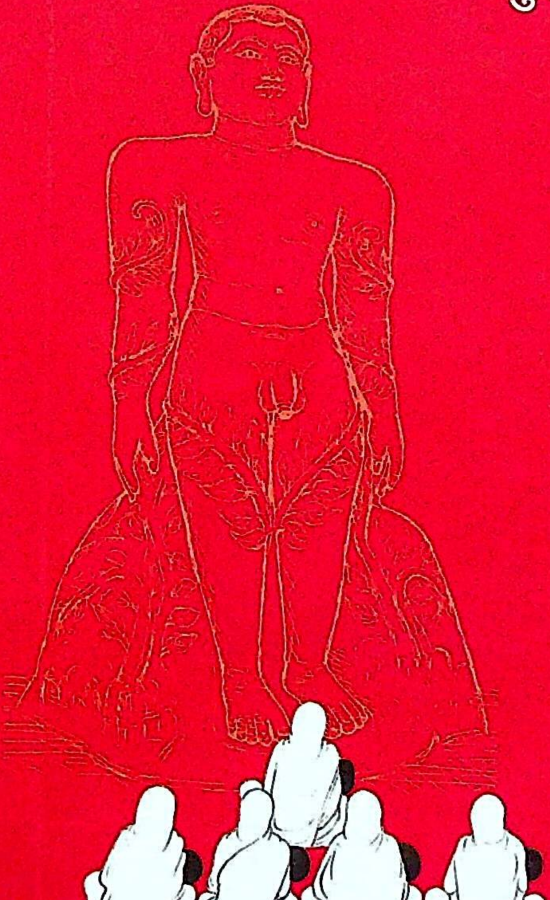

प्रकाशक
अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन उपसमिति
गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति-2018
श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिनाथ भगवान

अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी
को लिपि और अंक ज्ञान का शिक्षण देते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

14'5

।। श्री महावीराय नमः ।।

भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान

श्री ग० व० दि० जैन संस्थान
पुस्तक क्र० 5618
नरिया वाराणसी

लेखिका
सुषमा जैन

प्रकाशक
अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन उपसमिति
गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति 2018
श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक का नामः
भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान

प्रकाशकः
अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन उप समिति
गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक
महोत्सव समिति 2018, श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला

लेखिका :
सुषमा जैन

प्रथम संस्करणः
अगस्त 2017

प्रतियां :
1000

मूल्य :
स्वाध्याय

मुद्रक :
मेश प्रिन्ट्स, भोपाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नेहमयी माँ शान्ति
एवं
प्रेरणा पुरुष पिता श्री नीरजजी
को सादर समर्पित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृतौ, सवा ममाऽत्मा विदधातु देव।।

सत्वेषु मैत्री, हे प्रभु मेरा सभी प्राणियों पर मैत्री का भाव रहे। गुणीजनों पर प्रमोद का भाव हो और दुःखी जीवों पर करुणा भाव रहे, विपरीत वृत्ति वाले पर माध्यस्थ्य भाव बना रहे।

तुभ्यं नवस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भयोदधि-शोषणाय ।।

हे प्रभु तीनों लोकों की पीड़ा, कष्ट को दूर करने वाले आपको नमस्कार हो। भू लोक में निर्मल आभूषण रूप आपको नमस्कार हो। हे त्रिलोकीनाथ परम पद में स्थित परमेश्वर आपको नमस्कार हो। संसार समुद्र सुखाने वाले हे जिनेन्द्र देव आपको नमस्कार हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्वचन

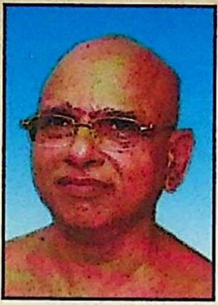

परम पूज्य आचार्य श्री वर्धमान सागर जी

जैन समाज के सुप्रसिद्ध कवि हृदय श्री नीरजजी की सुपुत्री श्रीमती सुषमाजी भी पिता के समान लेखनी की धनी हैं। उन्होंने गोम्मेटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी के महामस्तकाभिषेक 2018 के परम पावन अवसर पर एक ऐतिहासिक पुस्तक लिखी है। जिसमें आपने आर्यिकाओं का इतिहास खोजकर संकलित करने का पुरुषार्थ किया है।

भगवान ऋषभदेव से महावीर तक चतुर्विंशति तीर्थंकरों के काल में प्रमुख आर्यिकाओं के अतिरिक्त 20वीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी की अक्षुण्ण आचार्य परम्परा के आचार्यों तथा आचार्यकल्प श्री द्वारा 20वीं -21वीं सदी में दीक्षित आर्यिकाओं द्वारा संस्कृति और धर्म के लिए दिये गये महनीय अवदान का उल्लेख तथा साहित्य क्षेत्र में प्रमुख आर्यिकाओं द्वारा किये गये कार्यों का संकलन-संग्रह कर, परिश्रम पूर्वक प्रस्तुत किया।

हमारा मंगल आशीर्वाद है कि इस प्रकार उनकी लेखनी से इतिहास प्रकट होता रहे।

- आचार्य वर्धमान सागर

9.7.2017
श्रवणबेलगोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समवशरण में आर्यिका माताएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल कामना

अखिल विश्व के धरातल पर जन चेतना के विकास में ज्ञान का बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ज्ञान चाहे आध्यात्मिक हो या लौकिक अध्यात्म ज्ञान के विकास हेतु जितना प्रयास हो रहा है अभी और आवश्यकता है। महामस्तकाभिषेक महोत्सव 2018 के अवसर पर प्रकाशित, ''भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान'' पुस्तक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कर्मभूमि का प्रारंभ, प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव के द्वारा षटकर्मों का उपदेश अपने पुत्र, पुत्रियों को दिया गया। ब्राह्मी-सुन्दरी को लिपि एवं अंक ज्ञान कराया गया। यह धर्म की प्राचीनता सिद्ध करती है। भगवान आदिनाथ से महावीर तक के शासन काल में आर्यिकाओं का वर्णन मिलता है। तदनुसार प्रथमाचार्य शांतिसागरजी महाराज की अक्षुण्ण परम्परा में दीक्षित आर्यिकाओं का परिचय एवं योगदान पुस्तक में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

धर्म की रक्षा में महिलाओं का योगदान प्रमुख है। संस्कारों से धर्म निरन्तर बना रहता है । मां ही गुरू है, मां ही धर्म का आधार है। बालक-बालिका को मां ही सब कुछ है। दीक्षाओं में महिलाओं की संख्या अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका, क्षुल्लिका के बिना चतुर्विध संघ अधूरा है। आर्यिकाओं की चर्या एवं उपदेश का प्रभाव महिलाओं पर अधिक होता है, जो उन्हें परिवार एवं समाज के उत्थान में प्रेरणादायक होता है।

श्रीमती सुषमा हरिश्चन्द्र जी ने बहुत कम समय में इस पुस्तक का लेखनकार्य बड़ी मेहनत एवं लगन से किया है। सुषमाजी देश के मूर्धन्य विद्वान पं. नीरज जैन, सतना (म.प्र.) की सुपुत्री एवं समाधिस्थ आर्यिका विशुद्धमती माताजी के संस्कारों से ओत-प्रोत होकर विदुषी है। जिनमें संयमित जीवन जीने की कला है। इस सत्कार्य के लिए भक्ति के साथ यह लोकोपकारी हो इसके अध्ययनकर्ताओं को सही लाभ एवं मार्गदर्शन मिलेगा

इस मंगल भावना के साथ

– स्वस्तिश्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामीजी

14.07.2017
जैन मठ, श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला
(कर्नाटक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

संसार में माँ से बढ़कर कोई नहीं है। माँ ममता की मूर्ति और करुणा की सागर होती है । माँ के चार रूप सबके लिए सदा समादरणीय हैं। ये चार रूप हैं -

1. माँ, जननी, जन्मदात्री – जो हम सब की रक्षा करे, वह कहलाती है माँ, जननी या जन्मदात्री। माँ अपने बच्चे को नौ महीने गर्भ में पाल कर जन्म देती है। वह अपने बच्चे को रोते हुए नहीं देख सकती स्वयं कष्ट सह लेती है, लेकिन बच्चे को कष्ट में नहीं देख सकती। माँ से मिले संस्कारों को बच्चा कभी नहीं भुला सकता।

2. धरती माँ : भारत माँ – जिसकी मिट्टी में लोट-पोट कर हम बड़े होते हैं तथा जिस पर उगे पेड़-पौधों के फल-फूल खाकर तथा उस पर प्रवाहित होने वाली नदियों, सरोवरों, झरनों आदि का पानी पीकर पुष्टि को प्राप्त करते हैं। उस के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते।

3. जिनवाणी माता – जीवन में मोह-माया से बचे रहने, मानवीय मूल्यों के पालन करने तथा दुर्गतियों से बचे रहने के उपाय जानने के लिये जिनवाणी माता ही एक मात्र शरण है।

4. आर्यिका माता – धार्मिक एवं अध्यात्मिक दृष्टि से महिलाओं का सर्वोच्च पद आर्यिका माता का ही होता है। महिलाओं का मन नवनीत के समान जल्दी ही द्रवित होता है। माँ के सामने कोई भी भक्त अपनी व्यथा-कथा सहज भाव से कह सकता है। उनके उपदेश सुनकर कोई भी दुर्गति से बच सकता है। चौबीसों भगवान के समवशरणों में मुनियों की अपेक्षा आर्यिकाओं की संख्या तिगुनी होती आई है इससे उनका महत्व आसानी से समझा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका माता भी उपचार से मूल गुणों का पालन करने से मुनियों के समान व्रती मानी गई हैं।

प्रस्तुत कृति में विदुषी श्रीमती सुषमा जैन ने बहुत परिश्रम करके भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर के समय तक की तथा आचार्य शांतिसागर महाराज से लेकर अब तक की हुई सभी मुख्य आर्यिका माताओं का परिचय प्रस्तुत किया है। इन्हें पढ़कर भव्य जीवों को संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति होकर परणामों में सम्वेग और वैराग्य की प्राप्ति हो सकती है। इस कृतित्व के लिए विदुषी लेखिका का जितना उपकार माना जाय उतना कम हैं।

- प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश

पूर्व अध्यक्ष शास्त्री परिषद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

कर्नाटक के पावन क्षेत्र श्री श्रवण बेलगोला में भगवान बाहुबली के चरणों एवं श्रुतकेवली भद्रबाहु आचार्य की चरण वंदना करते हुए इस पुस्तक के लेखन की भूमिका बनी। जगतगुरू स्वस्ति श्री चारुकीर्ति महाराज स्वामीजी के आदेश एवं प्रोत्साहन से ही यह लेखन कार्य सम्पन्न हो सका।

''भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान'' पुस्तक में भारतीय संस्कृति में जैन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कर्मभूमि का प्रारंभ, प्रथम तीर्थंकर, श्री आदिनाथ भगवान के द्वारा षटकर्मों का उपदेश अपने पुत्र-पुत्रियों को सभी कलाओं का शिक्षण का विशेष रूप से ब्राम्ही एवं सुन्दरी को लिपि एवं अंक ज्ञान देने का वर्णन किया है।

आर्यिका माताजी के स्वरूप के साथ समवशरण में चौबीसों तीर्थंकर के समय गणिनी आर्यिका एवं आर्यिकाओं, श्रविकाओं का उल्लेख है। गरिमामय अतीत के माध्यम से भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी के शासनकाल की प्रमुख आर्यिकाओं का उल्लेख किया गया है। प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महाराज की अक्षुण्ण परम्परा के पांचों आचार्य भगवंतों के द्वारा दीक्षित आर्यिकाओं का परिचय एवं योगदान संक्षेप में पुस्तक में रेखांकित करने का प्रयास है। अन्त में अभी तक की सभी पूज्य माताजी के चरणों में भक्ति प्रसून समर्पित किये हैं। आर्यिकाओं की चर्या एवं उपदेश का प्रभाव महिलाओं पर अधिक होता है जो उन्हें परिवार, समाज के उत्थान में प्रेरणादायी होता है।

इस पुस्तक के लेखन में मेरा ज्यादा कुछ नहीं है। जिस प्रकार कुशल माली अपनी बगिया के पुष्प चुनकर सुन्दर पुष्प गुच्छ बनाता है इसी प्रकार मैंने धर्म ग्रंथों एवं जैन दर्शन और साहित्य की कथा वस्तुओं से चुनकर इसे तैयार किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री वर्धमान सागरजी ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये एवं आशीर्वाद दिया, उनके चरणों में नमोस्तु निवेदित करती हूँ। श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला के यशस्वी भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति स्वामी जी की प्रेरणा से यह पुस्तक आपके हाथों में पहुंच रही है। मैं स्वामी जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। इस लेखन कार्य में प्रज्ञा श्रमण बालयोगी मुनि श्री अमित सागर जी महाराज एवं आर्यिका गणिनि ज्ञानमती माताजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस यात्रा में आर्यिका प्रशान्तमती माताजी का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इन सभी की आभारी हूँ।

महामस्तकाभिषेक महोत्सव 2018 की राष्ट्रीय अध्यक्ष श्रीमती सरिता एम.के.जैन के प्रोत्साहन ने मेरा उत्साह बनाये रखा। पुस्तक लेखन के प्रारंभ से ही आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाशजी फिरोजाबाद का मार्गदर्शन मिला। उनसे आगे भी यही आशा रखती हूं। डॉ. अनुपम जैन इन्दौर ने इस लेखन कार्य में समय-समय पर ग्रन्थ उपलब्ध कराये उनकी आभारी हूँ। श्री सुरेश जैन मारौरा से उत्साह पूर्वक सहयोग मिला। पुस्तक का प्रकाशन अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन उपसमिति - गोम्मटेश्वर भगवान श्री बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक 2018 द्वारा हुआ। समिति के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। परिवार के सभी सदस्यों के सहयोग से यह लेखन कार्य पूर्ण हो सका। इस कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष में जिनका सहयोग रहा मैं उन सभी की आभारी हूं।

- सुषमा जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोभाव

"भारतीय संस्कृति में आर्यिकाओं का योगदान" प्रारंभ करते समय मेरी भावना रही कि जैन जगत की समस्त आर्यिका माताओं को नमन करते हुए उनके योगदान को रेखांकित करूँ पर मैं अपनी अल्प सार्मथ्य के कारण इस वृहद कार्य को एक साथ नहीं कर पा रही हूँ। वर्तमान में संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी की संघस्थ आर्यिका माताएँ गणाचार्य आचार्य श्री विरागसागरजी एवं आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की संघस्थ आर्यिका माताएँ एवं वर्तमान में सभी आचार्य भगवन्तों, मुनिराजों एवं गणिनी आर्यिका माताओं से दीक्षित समस्त माताएँ धर्म प्रभावना के साथ-साथ अपनी चर्या से प्रवचन से जन-जन को धर्म मार्ग पर लगा रही हैं। कई अपने लेखन से सरस्वती सेवा में रत हैं।

मोक्ष मार्ग की पथिक इन सभी विभूतियों के द्वारा किये जाने वाले योगदान को रेखांकित करने की भावना रखते हुए सभी आचार्य भगवन्तों को एवं मुनिराजों को नमोस्तु एवं आर्यिका माताओं को वंदामि करती हूँ।

- सुषमा जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। अनुक्रमणिका ।।

1. भारतीय संस्कृति 1
2. काल परिवर्तन एंव कर्मभूमि का प्रारंभ 7
3. तीर्थंकर की सभा समवशरण में आर्यिका 12
4. भारतीय संस्कृति में जैन नारी की भूमिका एवं योगदान 18
5. आर्यिका 27
6. गरिमामय अतीत तीर्थंकर आदिनाथ से महावीर तक 31
7. चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 49
8. आचार्य श्री वीरसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 53
9. आचार्य श्री शिवसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 70
10. आचार्य श्री धर्मसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 88
11. आचार्य अजितसागर जी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 102
12. आचार्य कल्पश्री श्रुतसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 105
13. आचार्य श्री वर्धमानसागरजी द्वारा दीक्षित आर्यिकाएँ 107
14. भक्ति प्रसून 118
15. संदर्भ सूची 119

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से पूरे विश्व में विख्यात है। जीवन जीने की कला और जीवन को उन्नति के शिखर तक ले जाना ही संस्कृति है। भारत में अध्यात्म, योग, धर्म के साथ जीवन का लक्ष्य पाने की गौरवशाली परम्परा रही है। यहाँ की प्राचीन संस्कृति में ऋषियों मुनियों और संतों की वाणी में उनके उपदेशों में यह शास्वत संदेश हमें सुनाई देता है। हमारे पूज्य पुरुष मानवीय प्रेरणा का रूप धरकर हमारे अंतस में बार-बार अवतरित होते हैं। हमें सजग करने का प्रयास करते हैं। जनहित की भावना और लोक कल्याण की कामना हमारे हृदय में प्रस्फुटित होती हैं। यहाँ पर वैदिक बौद्ध और जैन संस्कृति की धाराएं प्रवाहित होती रहीं हैं। देश की संस्कृति में जैन संस्कृति का एक विशिष्ट स्थान रहा जो प्राण वायु की तरह अध्यात्म प्रधान संस्कृति रही है। इसमें जीवन का लक्ष्य भोग को नहीं योग को माना है। जैन संस्कृति ने आध्यात्मिक जागरण और समाज के चहुंमुखी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैन दर्शन ने जीव की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर उसकी भावनाओं को विशेष महत्व दिया। यह भाव प्रधान धर्म है। जिस प्रकार बीज के अनुसार वृक्ष की उत्पत्ति होती है जीवन में जैसे विचार रूपी बीज मन में जमेंगे वैसा जीवन का निर्माण होगा। सृष्टि का रहस्य जानने का प्रयास सभी महापुरुषों और विचारकों ने किया। उनके विचार भले ही अलग अलग हों पर सभी ने यह स्वीकार किया कि सृष्टि की रचना जड़ और चेतन दो तत्वों के मेल से हुई। जड़ को जान लेने से सारा जगत दृष्टि में आ जाता है। चेतन को जान लेने से संसार में जन्म मरण करता हुआ जीव हमारे ज्ञान में आ जाता है। इस संसार में उस जानने वाले को जान लेना ही हमारे ज्ञान की सार्थकता है यही स्वयं को जानने का उपाय है।

> **भारतीय संस्कृति में वैदिक, बौद्ध एवं जैन संस्कृति की धाराएं प्रवाहित होती रहीं। उनमें जैन संस्कृति का एक विशिष्ट स्थान रहा जो देश की संस्कृति में प्राण वायु की तरह अध्यात्म प्रधान रहीं। जिसमें जीवन में दुखों से मुक्ति प्राप्त करना तथा विश्व में शांति की स्थापना करने के लिए एक शब्द का मंत्र हैं "अंहिसा"**

हम सबका लंबा भूतकाल होता है और क्षण भर का वर्तमान होता है दीर्घ कालीन भविष्य होता है। भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों में अपना (आत्मा का)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तित्व स्वीकार करके अपनी आत्मा को परमात्म पद पर स्थित करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। भारत में प्रचलित सभी दर्शनों का यह प्रमुख विचार सामने आता है कि संसार में दुःख न हो। जब भी कोई संत महात्मा या सुधिजन दुःखों से छूटने का उपाय बताने का उपक्रम करते हैं, तो एक वर्ग उसे जानने को उत्सुक होता है। संतों ने दुःखों से छुटकारा पाने के लिए त्याग और संयम का उपदेश दिया है। प्रायः सभी पंथ इससे सहमति रखते हैं कि तत्वज्ञान से मुक्ति होती है, भारतीय धर्मों एवं तत्वज्ञान में यह बात प्रमुखता से रही कि ज्ञान अल्प भले ही रहे पर वह जीवन में उतरे। जिसमें बंध और बंध का कारण आस्त्रव तथा मोक्ष और मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है। जब तक हमने भूत, भविष्य एवं वर्तमान की दशाओं को कारण सहित नहीं जाना तब तक हम आत्म तत्व को नहीं जान सकते। भव-भव में आसक्ति, बैर, प्रीति आदि कषायों से हमने यह संसार रचा है। अनासक्ति और वैराग्य की भावना से ही इसे समाप्त किया जा सकता है। वह शक्ति प्रत्येक जीव के पास है आवश्यकता है दृढ़ता से भावनाओं की शुद्धि की। बार-बार भावना करेंगे तो भावना ही भवनासनी है। संत कबीर ने कहा-ज्ञान की तो करोड़ो बातें की परन्तु इससे लाभ क्या हुआ ? जिसका अनुभव करना चाहिए था वह आत्म तत्व तो निपट अजान ही रह गया। जब तक अपनी ही पहचान नहीं होगी तब तक अज्ञान का अंधकार मिटेगा कैसे ? जब सूर्य उदय नहीं होगा तो करोड़ों तारे भी क्या रात के अंधकार को दूर कर सकेंगे ?

आत्म - तत्व जाना नहीं, कथे जु कोटिक ज्ञान ।
तारे तिमिर न नासहीं, जब लग उगै न भान ।।

- कबीर

यहाँ मोहरहित ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ माना है संसार की विषय वासना और आकांक्षाओं को छोड़े बिना वैराग्य और यथार्थ-ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है। वह तत्वज्ञान किसी काम का नहीं जो जीवन में अनासक्ति न ला सके। मोक्ष प्राप्ति में वही ज्ञान सहायक है जो जीवन में उतरे और संस्कार बनकर अगले भवों तक हमारे साथ जावे। जैनदर्शन तत्वज्ञान के साथ आचरण की शुद्धि पर भी बल देता है। जीवन में दुःखों से मुक्ति प्राप्त करना तथा विश्व में शांति की स्थापना करने के लिए एक शब्द का मंत्र है ''अहिंसा''। अहिंसा भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि है। चौबीस तीर्थकरों द्वारा उपदेशित धर्म है। अहिंसा प्राणी मात्र का आत्म धर्म भी है। '' बैरं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मज्झं ण केण वि '' कहने वाले तीर्थंकर भगवान महावीर विश्व के संपूर्ण जीवों से वात्सल्य और समता का भाव रखते थे। असीम करुणामय अहिंसक व्यवहार करना अहिंसा धर्म का प्रारंभिक पाठ है। इस आत्मधर्म का प्रभाव विश्व के सभी धर्मों पर है। वैदिक धर्म के यज्ञ आदि विधि में भी हिंसक पद्धति समाप्त सी होती जा रही है। ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' इसका मूलमंत्र है। सृष्टि में प्रत्येक जीव को जीने का अधिकार है। अहिंसा से ही हम सभी प्राणियों के अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं। भगवान महावीर ने तीस वर्षों तक समवशरण में दिव्यध्वनि से जन-जन को सर्वोदयतीर्थ की शिक्षा दी । मन में अहिंसा विचारों में अनेकान्त, वाणी में स्यादवाद् और व्यवहार में समानता का भाव हो।

भगवान महावीर ने सिखाया '' जियो और जीने दो ''। उन्होंने ने स्व की पहचान में ही रत्नत्रय की प्रतिष्ठा कर दी वे कहते हैं - पर से भिन्न स्व पर आस्था ही सम्यक्दर्शन है। पर से भिन्न स्व का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। और स्व में रच-पच जाना ही सम्यक्-चारित्र है। विश्व व्यवस्था के सही रूप का दर्शन कराने वाला भले ही कोई विशेष ज्ञानी पुरूष आज हमारे बीच में नहीं है पर चिंतन की धारा में आज भी हम विश्व के वास्ताविक रूप को जान सकते हैं। अहिंसा एक विचार और समग्र चिंतन है अहिंसा संपूर्ण जीवन दर्शन है और संसार के सभी धर्मों का मूल है मानवता की परिभाषा करना हो तो अहिंसा के अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ने अहिंसा के प्रयोग से ही देश को आजाद कराया । जैनाचार्यों ने अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को सबसे बड़ा पाप माना है। उन्होंने कहा झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि सभी पाप हिंसा के ही रूप हैं इसलिए उन्होंने अहिंसा को साध्य और सत्य, अचौर्य, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह आदि को व्रतों का साधक माना। इस प्रकार जैन सिद्धांत के अनुसार जीव के अपने अविकारी भाव अहिंसा है और विकारी भाव हिंसा हैं।

अहिंसा को प्रायः सभी विचारकों ने परम धर्म कहा है गोस्वामी तुलसीदास जी ने मन,वचन, काया की अहिंसा को निराले ढंग से निरूपति किया है

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा,
परनिन्दा सम अघ न गरीसा।

- रामचरित मानस उत्तरकाण्ड 120-ख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहीं रामचरित मानस में ही उन्होंने सत्य को भी परमधर्म कहा

धरमु न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना ।

-अयोध्याकाण्ड 94

उन्होंने परोपकार को भी धर्म कहा

परहित सरस धरम नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अघमाई।

-उत्तरकाण्ड 40

वीरवाणी के मूर्धन्य विद्वान पं. श्री नीरज जैन ने मध्यप्रदेश के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री शिवदयाल जी से यह प्रसंग जानना चाहा जो कि रामायण के मर्मज्ञ विद्वान थे उन्होंने इसका समाधान करते हुए कहा कि - ''हमारे पास कुछ करने के लिए मन वाणी शरीर ये तीन ही साधन हैं धर्म तो वही हो सकता है जो इन तीनों में बस जाए और इन तीनों को पवित्र करे। वास्तव में परमधर्म तो एक ही है और वह है अहिंसा। मन का सारा सोच विचार और मन के सारे संकल्प अहिंसा पर आधारित और अहिंसामय होना चाहिए अतः चिंतन के स्तर पर अहिंसा ही परमधर्म है। हमारे कार्य ही नहीं हमारे भाव भी अहिंसामय हों। मन की अहिंसा जब वाणी में उतरती है तब सत्य को परम धर्म की संज्ञा मिलती है। इसी प्रकार शरीर तथा साधनों के माध्यम से जब अहिंसा की साधना की जाती है तब परोपकार या परहित को ही परम धर्म कहेंगे। वाणी और शरीर के ये दोनों परम धर्म मिलकर ही अहिंसा की प्रतिष्ठा करेंगे।''

दौलतराम जी ने मुनियों की जीवन पद्धति दर्शाते हुये कहा - ''सूक्ष्म एक-इन्द्रिय से लगाकर संज्ञी-पंचेन्द्रिय तक छहों प्रकार के जीवों की हिंसा का त्याग होने से मुनि जब द्रव्य-हिंसा से विरत रहते हैं, और राग-द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया लोभ आदि विकारी भावों से रहित होने के कारण वे भाव- हिंसा से विरत हैं। इस प्रकार वही सच्चे और परिपूर्ण अहिंसक होते हैं।''-

षट्काय जीव न हनन तैं
सब विधि दरब-हिंसा टरी,
रागादि भाव निवारतैं
हिंसा न भावित अवतरी।

-छहढाला/6-1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
अहिंसा धर्म के पालन के लिए हमें व्रत नियम एवं संयम के साथ जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए यही उपाय संसार परिभ्रमण से छुटकारा दिला सकता है। आचार्य भगवन पूज्यपाद स्वामी मुक्ति का उपाय व्रतों को बताते हुए कहते हैं -

वरं व्रतैः पदं देवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान।। 3।।

-इष्टोपदेश -3

संसार परिभ्रमण से छूटकर मुक्ति प्राप्ति हो जावे तो उत्तम है। यदि मुक्ति प्राप्त न भी होवे तो भी पापाचरण द्वारा नरक जाने की अपेक्षा संयमाचरण से स्वर्ग की प्राप्ति करना अच्छा है। जीवन में कषायों की तीव्रता के कारण मार्ग नहीं सूझता और लोभ के कारण निकट आई विपत्ति नहीं दिखती इस संदर्भ में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं -

आयुर्वृद्धि क्षयोत्कर्ष हेतुं कालस्य निर्गमम।
वॉछतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतराम् धनं ।। 15 ।।

इष्टोपदेश -15

लोभी व्यक्ति धन की वृद्धि की लालसा में काल के बीतने को अच्छा समझते हैं, लेकिन धनादि के कारण आने वाली विपत्तियों का विचार नहीं करते। लोभ के कारण धन की अभिवृद्धि और उसके संरक्षण का चिंतन तो करते हैं किन्तु अपनी आयु के क्षय और आने वाली विपत्तियों का चिंतन नहीं करते हैं।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन का उद्देश्य चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को माना गया है। इनके पालन से आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। हमारी संस्कृति हमें शुभता एवं पावन पुनीत जीवन का संदेश देती है। चारों पुरुषार्थों में मुख्य प्रासव्य मोक्ष ही है। आध्यात्मिक गुरूओं साधु संतों ने कहा कि यदि सीधे मोक्ष पुरुषार्थ करने की क्षमता न हो तो क्रम से चारों पुरुषार्थ करके अपने लक्ष्य को पाया जा सकता है। इस संदर्भ में लगभग एक हजार वर्ष पूर्व दिगम्बर आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी ने अनेक शास्त्रों की रचना की । हिंसा और अहिंसा की परिभाषा के लिए उन्होंने एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा। अहिंसा के मार्ग से चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। उनका यह ग्रंथ है ''पुरुषार्थ - सिद्धि-उपाय'' श्री अमृतचंद स्वामी ने इस ग्रंथ में हिंसा अहिंसा का इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
बाद के आचार्यों ने कहा कि आज जो कुछ उपलब्ध है वह बीज रूप में ''पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय'' ग्रंथ में अवश्य है।

चारों पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए वेद व्यास जी कहते है ''मैं आकाश में भुजाएँ ऊँची कर-कर के कह रहा हूँ लेकिन मेरी बात कोई सुनता ही नहीं, धर्म पुरुषार्थ करना चाहिए, धर्मपूर्वक ही अर्थ पुरुषार्थ को साधा जाए और काम पुरुषार्थ अर्थात् कामनाओं की पूर्ति भी धर्मपूर्वक की जा सकती है, तो भी कोई धर्म को धारण नहीं करता।''

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति के समन्वय का प्रयास किया था। उसी प्रकार यदुवंशी श्रीकृष्ण ने भी वैसा ही प्रयास किया। श्रीराम एवं श्रीकृष्ण ये दोनों ही विभूतियाँ भारत की मौलिक सांस्कृतिक एकता की प्रतीक हैं तथा दोनों प्राचीन श्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृतियों के बीच की सुदृढ़ कड़ियाँ हैं दोनों ही परम्पराओं में प्रायः समान रूप से सम्मानीय हैं। आज भी ईश्वर के अवतार के रूप में इनकी पूजा होती है। जैन परम्परा में भी नारायण, अर्द्धचक्री सर्वप्रतापी नरेश एवं धर्मात्मा के रूप में इनकी स्तुति हुई है। कुंतीपुत्र पांडवों का भी जैन श्रमण के रूप में वर्णन आता है। श्रमण संस्कृति प्राचीन भारत की मानव संस्कृति है। वैदिक संस्कृति के उदय के बाद श्रमण संस्कृति उसके साथ समन्वय करती रही और अपनी पृथक सत्ता बनाए हुए विकसित भी होती रही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल परिवर्तन-कर्मभूमि का प्रारंभ

मानवीय सभ्यता का विकास एवं ह्रास होता रहता है। सृष्टि के सभी प्राणी अनादिकाल से हैं और आगे अनन्तकाल तक रहेंगे, उन्हें कोई बना नहीं सकता और न ही कोई नष्ट कर सकता है, क्योंकि सत्ता का कभी उत्पाद तथा नाश नहीं होता। मनुष्यादि पर्यायें बदलती रहती हैं। कालक्रम के परिवर्तन के अनुसार उनकी उम्र, लम्बाई, चौड़ाई, आहारादि में परिवर्तन देखा जाता है। परिवर्तन की इस श्रृंखला को षट्काल परिवर्तन कहते हैं। अनादिकाल से परिवर्तन होता आ रहा है और अनन्तकाल तक परिवर्तन होता रहेगा। कभी वह उन्नत दिखाई देता है तो कभी अवनत। गतिशीलता का यह क्रम ऐसे ही चलता रहेगा। काल-परिवर्तन दो प्रकार का होता है - 1. अवसर्पिणी 2. उत्सर्पिणी।

उत्थान से पतन की ओर जाने वाले काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं पतन से उत्थान की ओर जाने वाला काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है। कालों का यह परिवर्तन भरत और ऐरावत क्षेत्रों एवं उनके आर्य-खण्डों में ही होता है। अंसख्यात अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी बीत जाने पर हुण्डाकाल आता है। वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है उस काल के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान ने लौकिक एवं धार्मिक षटकर्मों भरत आदि पुत्रों को सभी कलाओं से युक्त विद्याओं का उपदेश दिया और सिखाईं। दोनों पुत्रियों ब्राह्मी को लिपि और सुन्दरी को अंक विद्या में निष्णात करके शिक्षा के क्षेत्र में नारी का विशेष अधिकार स्थापित किया।

(1) अवसर्पिणी काल - उत्थान से पतन की ओर जाने वाले काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं। इसमें मनुष्यों एवं तिर्यंचों की आयु, शरीर की ऊँचाई, आहार, बुद्धि आदि में क्रमशः ह्रास होता चला जाता है।

(2) उत्सर्पिणी काल - यह काल पहले वाले से ठीक विपरीत है। पतन से उत्थान की ओर जाने वाले काल को उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इसमें उपरोक्त सभी विषयों में क्रमशः वृद्धि होती जाती है। इन दोनों कालों का समय 10-10 कोड़ा-कोड़ी सागर का होता है। एक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी को मिलाकर 20 कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। दोनों कालों के छह-छह उपविभाग होते हैं।

1. सुखमा-सुखमा - जिसमें सारी आवश्यकताओं की पूर्ति 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से होती है। जीवन निर्वाह के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। जीव युगलिया ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म लेते हैं और सन्तान युगल को जन्म देकर उनका मुँह देखे बिना ही मरण को प्राप्त हो जाते हैं। मरण समय पुरूष को छींक एवं स्त्री को जम्हाई आती है।

2. सुखमा – शरीर का वर्ण शंख के समान सफ़ेद होता है। यह काल 3 कोड़ा-कोड़ी सागर का होता है।

3. सुखमा-दुःखमा – यह काल 2 कोड़ा-कोड़ी सागर का होता है। इस काल के अन्त में 14 कुलकरों की उत्पत्ति होती है जो परिवर्तन से चिन्तित जीवों को कर्म का उपदेश देते हैं। इन तीनों कालों में जीव संयम धारण नहीं करते तथा उनका अकालमरण भी नहीं होता है। इनमें उत्पन्न होने वाले जीव नियम से मरण कर देवपर्याय को ही प्राप्त होते हैं तथा इनका शरीर भी कर्पूर की तरह उड़ जाता है।

4. दुःखमा-सुखमा – इसे कर्मभूमि का प्रारम्भ काल भी कहते हैं इसमें दुःख अधिक एवं सुख अल्प होता है। भोगभूमि काल की सारी वस्तुएँ लुप्त हो जाती हैं। एवं सभी को कृषि आदि कार्य करने पड़ते हैं। सभी मनुष्य विवाह, सन्तानोत्पत्ति, गृह निर्माणादि कार्य भी करते हैं। इसी काल में 63 शलाका पुरूषों का जन्म होता है। 24 तीर्थंकर क्रमशः इस धरा पर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। नर से नारायण बनने की प्रक्रिया इस काल में प्रारम्भ हो जाती है।

5. दुःखमा – आजकल यही काल चल रहा है। जिसे कलियुग के नाम से लोग जानते हैं। इसमें दुःख की अधिकता है। इसमें जीवों की उत्कृष्ट आयु 120 वर्ष तथा अवगाहना 7 हाथ की होती है। इसमें धर्म की हानि होने लगती है, महापुरुषों का अभाव रहता है। इस काल के अन्तिम पखवाड़े के दिन पूर्वान्ह में धर्म का नाश, मध्यान्ह में राजा का नाश एवं अपरान्ह में अग्नि का नाश हो जाता है।

6. दुःखमा-दुःखमा – इसमें दुःख ही दुःख होता है। इस काल में जाति, धर्म-कर्म का अभाव हो जाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति अमानुषिक हो जाती है। वह पूर्णतः नग्न विचरण करते हैं एवं कच्चे मांस, कन्दमूल खाते हैं। अन्त में आयु घटकर 15 वर्ष एवं अवगाहना 1 हाथ रह जाती है। इस काल के अन्त में 49 दिन तक 7 कुवृष्टियाँ 7-7 दिन तक होती हैं जिससे सब कुछ नष्ट हो जात है, जिसे प्रलयकाल कहते हैं। प्रथम वृष्टि के दौरान ही जीवों के विलाप से दयार्द्र देव एवं विद्याधर 72 युगलों के साथ-साथ संख्यात मनुष्य एवं तिर्यंचों को विजयार्ध पर्वत की गुफाओं तथा अन्य सुरक्षित स्थानों में ले जाते हैं शेष जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। यहीं पर अवसर्पिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल का अन्त हो जाता है। इसके पश्चात् श्रावण वदी एकम से उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होता है। जिसके प्रारम्भ में क्रमशः 49 दिन तक 7-7 दिन 7 सुवृष्टियाँ होती हैं, जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वी पुनः महक उठती है और बचे हुये 72 जोड़े आदि बाहर निकल आते हैं। उत्सर्पिणी काल की सम्पूर्ण व्यवस्था अवसर्पिणी काल से ठीक विपरीत है।

यह षट्-कालों का परिवर्तन भरत और ऐरावत क्षेत्र में तथा उनके आर्यखण्डों में ही होता है, अन्यत्र नहीं अर्थात् शेष 5 क्षेत्रों एवं म्लेच्छ खण्डों तथा विजयार्ध पर्वत पर यह परिवर्तन नहीं होता। विदेहक्षेत्र में सदैव चतुर्थ काल के प्रारम्भ जैसा काल रहता है। इस तरह एक अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी के पूर्ण बीत जाने पर एक कल्पकाल पूर्ण होता है। ऐसे अनन्त कल्पकाल अभी तक बीत चुके हैं। ऐसी असंख्यात उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी बीत जाने पर हुण्डाकाल आता है। वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है।

हुण्डावसर्पिणी काल-

1. सभी तीर्थंकरों का अयोध्या में जन्म न होकर कुछ का अन्यत्र जन्म होना।
2. तीर्थंकर की पुत्री होना जैसे-श्री ऋषभ देव की ब्राम्ही, सुन्दरी पुत्रियाँ होना।
3. चक्रवर्ती की मानहानि
4. त्रेषठ शलाका पुरुषों में कमी आना।
5. बाल ब्रम्हचारी तीर्थंकरों का होना जैसे पंच बालयति। सामान्य केवली मुनि आदि बाल ब्रम्हचारी होना।
6. प्रथम चक्रवर्ती भरत द्वारा चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना का होना।
7. तीर्थंकरों पर मुनि अवस्था में घोर उपसर्ग होना जैसे- सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ,महावीर पर।
8. सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती मोक्षगामी जीवों का जन्म चौथे काल में ही होता है पर प्रथम तीर्थंकर, प्रथम चक्रवर्ती, प्रथम कामदेव सर्व प्रथम मोक्षगामी श्री अनंतवीर्य आदि का जन्म व मोक्ष तृतीय काल में ही हो गया।
9. कुछ तीर्थंकरों के तीर्थकाल में धर्म विच्छेद (समाप्त) हो जाना। जैसे 9 वें तीर्थंकर के तीर्थकाल से 15 वें तीर्थंकर के तीर्थ काल में बीच-बीच में धर्म विच्छेद हुआ।

काल के इन छह भागों में से पहले और दूसरे भाग में न तो धर्म रहता न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा न समाज । तीसरे काल का बहुत भाग बीतने तक लोगों का जीवन भोग प्रधान रहता है। इसके बाद परिवर्तन प्रारंभ हो जाता है। कल्पवृक्षों से सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाती है। तब क्रम से चौदह कुलकर होते हैं जो एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को संपादित करते हैं, और जीवन मूल्यों की स्थापना करते हैं। आदिपुराण में आचार्य श्री जिनसेन स्वामी ने कुलकरों के कार्यों का वर्णन किया कि प्रतिश्रुति पहले कुलकर ने कर्मभूमि के प्रारंभ में चन्द्रमा को देखने से भयभीत मनुष्य के भय को दूर किया । क्षेमंधर ने कल्याण एवं सुव्यवस्था का प्रचार किया। क्षेमंकर ने कल्याणकारी कार्यों का उपदेश दिया, सीमंधर ने आर्य पुरूषों की भूमि की सीमा नियत की।

मरुदेव ने पारिवारिक संबंधों की स्थापना करना सिखाया। चौदहवें, कुलकर श्रीनाभिराय ने बच्चे के जन्म पर नाल काटने का कार्य सिखाया । इन्हीं नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ थे। जो इस युग में जैनधर्म के प्रवर्तक हुए। इनके समय से ही गांव, नगर आदि की व्यवस्था बनी/कर्मभूमि का प्रारंभ होने से इनके द्वारा ही धर्म पुरुषार्थ का प्रारंभ माना जाता है। जिसका मूलरूप अहिंसा रही इसलिए इन्हें आदि-ब्रम्हा भी कहा गया। ऋषभदेव के समय प्रजा के सामने जीवनयापन की समस्या थी, जिन कल्पवृक्षों से लोग अपना निर्वाह करते थे वे लुप्त हो चुके थे। नई-नई वनस्पतियाँ उग आई थीं, उन्होंने उगे हुए इक्षुदंडों से रस निकालकर उपयोग करना सिखाया। इनका वंश इक्ष्वाकु वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रजा को असि, मसि, कृषि शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन षट् कर्मों से आजीविका सिखाई इसलिए इन्हें प्रजापति भी कहा जाता था। समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से हो सके सो तीन वर्णों की स्थापना की जो देश की सुरक्षा में संलग्न थे वे क्षत्रिय कहलाए। खेती व्यापार, व्यवसाय करने वाले वैश्य और जो सेवा आदि कार्य करते थे उन्हें शूद्र कहा गया। लौकिक षट्कर्मों के साथ उन्होंने देवपूजा, गुरूभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान रूप धार्मिक षट्कर्मों का उपदेश दिया। लोक को लौकिक और परलौकिक कार्यों का उपदेश देकर राज्य की व्यवस्था समाज का गठन और नागरिक सभ्यता के विकास का प्रारंभ किया। ऋषभदेव के द्वारा बताया हुआ यह अहिंसामय आत्मधर्म ही मुक्ति और सुख का मार्ग है। उस समय की सारी व्यवस्था ऋषभदेव ने अपने बुद्धिबल से की थी इसलिए वे आदिपुरुष, ब्रम्हा और विधाता कहलाए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिराय की आज्ञा से कच्छ और महाकच्छ के राजाओं की बहिनों यशस्वति और सुनंदा के साथ ऋषभदेव का विवाह संपन्न हुआ। नाभिराय ने उनका राज्याभिषेक कर राज्य का कार्यभार सौंप दिया। ऋषभदेव के राज्य में प्रजा अत्यंत समृद्ध और संतुष्ट हुई, चिरकाल तक सुख से रही। रानी यशस्वती के भरत आदि सौ पुत्र तथा एक पुत्री ब्राम्ही हुई। रानी सुनंदा, ने बाहुबली नामक पुत्र एवं पुत्री सुंदरी को जन्म दिया, जगतगुरू भगवान ऋषभदेव ने भरत आदि सभी पुत्रों को यथा योग्य सभी कलाओं से युक्त उपयोगी लोक का उपकार करने वाली सभी विद्याएँ सिखाई। उन्होंने अपनी दोनों कन्याओं को ब्राम्ही को लिपि और सुन्दरी को अंक विद्या के ज्ञान में निष्णात बनाकर शिक्षा के क्षेत्र में नारी का विशेष अधिकार स्थापित कर दिया। विद्या ही धर्म, अर्थ कामरूप फल से सहित संपदाओं की पूर्ति करने वाली और सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है। ऋषभदेव ने अपनी दोनो पुत्रियों को गोद में बिठाकर ज्ञानाभ्यास कराया उन्होंने बायें हाथ से ब्राम्ही को वर्णमाला और दाहिने हाथ से सुन्दरी को अंक का बोध कराया। भगवान के मुख से ''सिद्धं नमः'' मंगलाचरण हुआ जिसका नाम सिद्ध मातृका है इस प्रकार शुद्ध अक्षरावली को ब्राम्ही ने धारण किया। ब्राम्ही लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है इसका प्रयोग वर्ण ध्वन्यात्मक है इसे लिखने एवं बोलने में एक रूपता है। वर्तमान में भारत की अधिकांश लिपियाँ ब्राम्ही लिपि से विकसित हुंइ और बांयी से दांयीं ओर लिखी जाती हैं। सुन्दरी को इकाई दहाई आदि से अंकबोध कराने से अंक दायें से बायें और इकाई दहाई सैकड़ा रूप में लिखे जाते हैं, ब्राम्ही एवं सुंदरी दोनों पुत्रियों ने समस्त विद्याओं एवं कलाओं में पूर्णता प्राप्त की वे इतनी पारंगत हो गइं मानो सरस्वती का ही रूप हों।

तेरासी लाख पूर्व तक ऋषभदेव संसार की लौकिक धारा से जुड़े रहे और उन्होंने प्रजा को श्रम शिक्षा सदाचार की प्रवृत्ति की प्रेरणा दी व वर्ण की स्थापना कर समाज की उन्नति का प्रयास किया। एक दिन राजसभा में देवी नीलांजना का नृत्य देखते हुऐ उन्हें संसार की असारता का बोध हुआ तथा अंतस में वैराग्य हुआ उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की उनके साथ चार हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली। एक हजार वर्ष तक तपश्चरण करने के बाद उन्हें कैवल्य की उपलब्धि हो गई वे सर्वज्ञ हो गए। सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की, समवशरण में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने सामाजिक रचना का आधार अहिंसा को बताते हुए इसके लिए सत्य, अचौर्य, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह का उपदेश दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेकान्त, स्यादवाद, द्रव्य, तत्व आदि के उपदेश के माध्यम से प्राणी मात्र के कल्याण और जीवन के उत्तरोत्तर विकास का मार्ग बताया। भरत षटखंड के अधिपति चक्रवर्ती हुए इन्हीं के नाम से हमारे देश का नाम भारत हुआ। भरत ने ही संपूर्ण भारत को राजनैतिक रूप से एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर की सभा समवशरण में आर्यिका

तीर्थंकर भगवन्तों को जब केवलज्ञान होता है तो जिस सभा में बैठकर भगवान प्राणीमात्र के कल्याण का उपदेश देते हैं वह सभा मंडप समवशरण कहलाता है। श्री मण्डप भूमि में स्फटिक की ''सोलह दीवारों'' से विभाजित बारह कोठे होते हैं, जिनमें बारह सभाएँ होती हैं। तीर्थंकर भगवान् की बायीं ओर से क्रमशः1 गणधर एवं समस्त मुनि 2. कल्पवासी देवियाँ 3. आर्यिकाएँ एवं श्राविकाएँ 4. ज्योतिषी देवियाँ 5. व्यन्तर देवियाँ 6. भवनवासी देवियाँ 7. भवनवासी देव 8. व्यंतर देव 9. ज्योतिषी देव 10. कल्पवासी देव 11. चक्रवर्ती एवं मनुष्य 12. पशु-पक्षी बैठते हैं। मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ गंगा के प्रवाह की भाँति अनादिकाल से प्रवाहित है। चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के समवशरण में गणधर देव सहित समस्त मुनिराज, गणिनी आर्यिका सहित आर्यिकाओं की एवं श्रावक श्राविकाओं की संख्या उत्तरपुराण के अनुसार इस प्रकार है।

तीर्थंकर आदिनाथ जी - भगवान के समवशरण में श्री वृषभसेन आदि चौरासी गणधर व चौरासी हजार मुनि, गणिनी आर्यिका ब्राम्ही सहित तीन लाख पचास हजार आर्यिकाएँ थीं। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर अजितनाथ जी - समवशरण में सिंहसेन आदि नब्बे गणधर थे। एक लाख तपस्वी थे, गणिनी आर्यिका प्रकुब्जा आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएँ थीं, तीन लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर संभवनाथ जी - समवशरण में चारूषेण आदि एक सौ पाँच गणधरों से भगवान् सम्भवनाथ सुशोभित हो रहे थे। दो लाख मुनियों के मध्य अत्यन्त शोभा पा रहे थे । धर्मार्या गणिनी आर्यिका व तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएँ थीं, तीन लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर अभिनंदननाथ जी - वज्रनाभि आदि एक सौ तीन गणधर एवं तीन लाख मुनि भगवान के समवशरण में थे गणिनी आर्यिका मेरूषेणा आदि तीन लाख तीस हजार छह सौ आर्यिकाएं थीं, तीन लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएँ उनकी स्तुति करती थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर सुमतिनाथ जी – भगवान के समवशरण में सप्त ऋद्धियों के धारक अमर आदि एक सौ सोलह गणधर थे, गणिनी आर्यिका अनंतमती व तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएँ उनकी अनुगामिनी थीं, तीन लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर पद्मप्रभु जी – जगत् का हित करने वाले भगवान् के समवशरण में वज्रचामर आदि एक सौ दश गणधर थे, तीन लाख तीस हजार मुनि सदा उनकी स्तुति करते थे। गणिनी आर्यिका रतिषेणा एवं चार लाख बीस हजार आर्यिकाएँ उनकी स्तुति करती थीं। तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी – समवशरण में प्रमुख गणधर बल सहित पंचानवे गणधर थे, गणिनी आर्यिका मीनार्य व तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएँ थीं, तीन लाख श्रावक और पाँच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ जी – भगवान के समवशरण में श्रीदत्त आदि तेरानवें गणधर थे, सब मुनियों की संख्या अढ़ाई लाख थी। गणिनी आर्यिका वरूणा व तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं स्तुति करती थीं। तीन लाख श्रावक एवं पांच लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर पुष्पदन्त जी – भगवान के समवशरण में ऋद्धियों को धारण करने वाले विदर्भ व अट्ठासी गणधर थे, दो लाख मुनि थे, घोषार्या व तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं स्तुति करती थीं। दो लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएं थीं।

तीर्थंकर शीतलनाथ जी – इनकी सभा समवशरण में सप्त ऋद्धियों को धारण करने वाले इक्यासी गणधर थे , सब मुनियों की संख्या एक लाख थी, गणिनी आर्यिका धारणा एवं तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं, दो लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ उनकी स्तुति करती थीं।

तीर्थंकर श्रेयांसनाथ जी – भगवान श्रेयांसनाथ के समवशरण में कुन्थु आदि सतहत्तर गणधर थे, चौरासी हजार मुनियों से शोभित थे। एक लाख बीस हजार आर्यिकाएं उनकी स्तुति करती थीं, दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकाएँ व गणिनी आर्यिका चारणा थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर वासुपूज्य जी – समवशरण में भगवान श्री धर्म व छ्यासठ गणधरों के समूह से वन्दित थे, बहत्तर हजार मुनियों से सुशोभित थे, गणिनी आर्यिका वरसेना व एक लाख छः हजार आर्यिकाएं थीं, दो लाख श्रावकों व चार लाख श्राविकाओं से वंदित थे।

तीर्थंकर विमलनाथ जी – भगवान समवशरण में मन्दर आदि पचपन गणधरों से शोभित थे, अड़सठ हजार मुनि उनकी स्तुति करते थे। गणिनी आर्यिका पद्मा व एक लाख तीन हजार आर्यिकाएँ उनकी स्तुति करती थीं, दो लाख श्रावक तथा चार लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर अनंतनाथ जी – भगवान के समवशरण में जय आदि पचास गणधरों के द्वारा उनकी स्तुति होती थी, छ्यासठ हजार मुनि थे। गणिनी आर्यिका सर्वश्री एवं एक लाख आठ हजार आर्यिकाओं का समूह शोभित था, दो लाख श्रावक व चार लाख श्राविकाएँ उनकी स्तुति करती थीं।

तीर्थंकर धर्मनाथ जी – भगवान के समवशरण में अरिष्टसेन और तैंतालीस गणधर थे, चौंसठ हजार मुनि थे, गणिनी आर्यिका सुब्रता व बासठ हजार चार सौ आर्यिकाएँ थीं। दो लाख श्रावक चार लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर शान्तिनाथ जी – भगवान के समवशरण में चक्रायुध छत्तीस गणधर थे। बासठ हजार मुनिराज थे, हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ आर्यिकाएँ थीं, दो लाख श्रावक व चार लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर कुन्थनाथ जी – भगवान के स्वयम्भू सहित पैंतीस गणधर थे, साठ हजार मुनिराज उनके साथ थे। गणिनी आर्यिका भाविता और साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाएँ व तीन लाख श्राविकाएँ थीं, दो लाख श्रावक थे।

तीर्थंकर अरनाथ जी – भगवान के समवशरण में प्रमुख गणधर कुम्भार्य व तीस गणधर थे। पचास हजार मुनिराज उनके साथ थे। गणिनी आर्यिका यक्षिला एवं साठ हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख साठ हजार श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर मल्लिनाथ जी – भगवान के समवशरण में विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, चालीस हजार मुनिराज थे। गणिनी आर्यिका बन्धुषेणा एवं पचपन हजार आर्यिकाएँ थीं, श्रावक एक लाख और श्राविकाएँ तीन लाख थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ जी - भगवान के समवशरण में मल्लि आदि अठारह गणधर थे, तीस हजार मुनिराज थे। गणिनी आर्यिका पुष्पदंता और पचास हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर नमिनाथ जी - भगवान के समवशरण में सुप्रभार्य आदि सत्रह गणधर थे, मुनियों की संख्या बीस हजार थी। गणिनी आर्यिका मंगिनी व पैंतालीस हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर नेमीनाथ जी - इनकी सभा समवशरण में वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे, अठारह हजार मुनिराज थे। गणिनी आर्यिका यक्षि, राजीमती, कात्यायनी आदि सब मिलाकर चालीस हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी - भगवान् पार्श्वनाथ के समवशरण में स्वयम्भू सहित दस गणधर थे, सोलह हजार मुनिराज थे। गणिनी आर्यिका सुलोचना और छत्तीस हजार आर्यिकाएँ थीं एक लाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तीर्थंकर महावीर स्वामी - श्री वर्धमान स्वामी के समवशरण में इन्द्रों-द्वारा पूजनीय इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर हुए। मुनीश्वरों की संख्या चौदह हजार थी। गणिनी आर्यिका चन्दना व छत्तीस हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

तिलोयपण्णत्ती के चतुर्थ महाधिकार में यति वृषभाचार्य ने चौबीस तीर्थंकरों की प्रमुख (गणिनी) आर्यिकाओं के नाम निर्देश करते हुए उन्हें "सब्ब-विरदीओ" पद से अभिहित किया है -

बम्हप्पकुज्ज -णामा, धम्मसिरी मेरुसेण- अयणंता।
तह रतिसेणा मीणा, वरुणा घोसा य धरणा य।।
चारण-वरसेणाओ, पम्मा सव्वस्सि-सुव्वदाओ वि।
हरिसेण-भावियाओ, कुंथू-मधुसेण-पुप्फदंताओं।।
मग्गिणि-जक्खि-सुलोया, चंदण-णामाओ उसह-पहुदीणं।
एदा पढम-गणीओ, एक्केक्का सव्वविरदीओ।।

-(आचार्य यतिवृषभ, तिलोयपण्णत्ति, गाथा 1189-1191)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ब्राह्मी, प्रकुब्जा, धर्मश्री, मेरुषेणा, अनन्ता, रतिषेणा, मीना, वरुणा, घोषा, धरणा, चारणा, वरसेना, पद्मा, सर्वश्री, सुव्रता, हरिषेणा, भाविता, कुन्थुसेना, मधुसेना, पुष्पदन्ता, मार्गिणी, राजमती, सुलोका (सुलोचना) एवं चन्दना नामक एक-एक आर्यिका क्रमशः ऋषभादिक तीर्थ में रहने वाली आर्यिकाओं के समूह में प्रमुख थीं।)

णभ-पण-दु-छ-पंचंबर-पंचंक-कमेण तित्थ-कत्ताणं।
सव्वाणं विरदीओ, चंदुज्जल-णिक्कलंक-सीलाओ।।

-(आचार्य यतिवृषभ, तिलोयपण्णत्ति, गाथा 1188)

सर्व तीर्थंकरों के तीर्थ में चन्द्र सदृश उज्ज्वल एवं निष्कलंक शील से संयुक्त समस्त आर्यिकाएँ क्रमशः 50, 56, 250 अंक प्रमाण थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय संस्कृति में जैन नारी की भूमिका एवं योगदान

हम यदि एक स्वस्थ समाज की बात करते हैं तो समाज की हर इकाई का संस्कारित होना आवश्यक है। समाज में नैतिक मूल्यों को बनाये रखना मानवीय मूल्यों की रक्षा और उनके उत्कर्ष के लिए निरंतर प्रयास करते रहना समाज के प्रत्येक सदस्य का दायित्व है चाहे वह पुरुष हो या नारी। मानव संस्कृति की रक्षा का पाठ वह अपनी जननी से सीखता है। मानवीय मूल्यों की संरचना में नारी का योगदान पुरुष से अधिक माना गया है। नारी का हृदय दया, करुणा, स्नेह, वात्सल्य आदि गुणों का भंडार है। नारी सदा काल से समाज के लिए सुख और मंगल की विधायक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। दो हजार वर्ष पूर्व आचार्य समंतभद्र स्वामी ने तत्व दृष्टि को नारी की उपमा देते हुए अपने ग्रंथ रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अंतिम छंद में कहा था

मानवीय मूल्यों की संरचना में नारी का योगदान पुरुष से अधिक माना गया है। नारी का हृदय दया, करुण, स्नेह, वात्सल्य आदि गुणों का भण्डार है। नारी सदैव से समाज के लिए सुख और मंगल की विधायक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित रही है। देश की संस्कृति में नारी की हर क्षेत्र में सहभागिता रही।

सुखयतु सुखभूमिः, कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां, शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा, कन्यका सम्पुनीता
जिनपति पद पद्म, प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः।।

तीर्थंकर भगवान के चरणकमलों में दृष्टि लगाने वाली सम्यकदृष्टि रूपी लक्ष्मी, पति को सुख देने वाली पत्नी की तरह मुझे सुख प्रदान करे, पुत्र की रक्षा करने वाली शीलवती मां की तरह मेरी रक्षा करे और कुल को पवित्र करने वाली गुणवती कन्या की तरह मेरी आत्मा को पवित्र करे। इस प्रकार उन महान आचार्य ने अपनी सरल भाषा में नारी के लिए यह प्रमाण-पत्र अंकित कर दिया था कि नारी बाल्यकाल में, युवा अवस्था में और प्रौढ़ावस्था में भी अपनी भिन्न-भिन्न भूमिकाओं के द्वारा सुख और मंगल का विधान करती है। इस भावना में नारी शक्ति को किसी व्यक्ति के लिए, नहीं वरन् पूरी समाज के लिए, पूरे राष्ट्र के लिए और सारी मानवता के लिए कल्याण का स्रोत स्वीकार किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे वर्तमान का सम्यक् पुरूषार्थ का नियोजन ही समाज के विकास में सहायक होता है। जीवन में यदि स्थायित्व चाहिए तो स्त्री पुरुष दोनों का बुद्धि, ज्ञान और व्यवहारिक सम्पत्ति की दृष्टि से समान होना जरूरी है। श्री 108 आचार्य विद्यानंद जी के अनुसार ''समाज की रचना में पुरुष और स्त्री दो समान अविभाज्य अंग हैं। पुरुष के बिना समाज गति हीन है और स्त्री के बिना स्थिति हीन है।'' नारी हृदय की स्थिरता और वात्सल्य ही परिवार व समाज की उन्नति में सहायक है। उसके स्वभाव में दया, करुणा और स्नेह के साथ-साथ संगठन की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। जहाँ नारी ने इन्हें अपने व्यक्तित्व निर्माण में संयोजित किया वहां शिक्षा, व्यवसाय एवं सामाजिक कार्यों में अनेक उचाईयाँ पाईं। बुजर्गों का अनुभव, जवानों का उत्साह, नारी की समझदारी एवं पुरुषों का पराक्रम ये मिलकर चलें तो समाज में चमत्कार हो जाये। परिवार एवं समाज को स्थायित्व देने का दायित्व स्त्री ही निभा सकती है।

विद्वानों के अनुसार पांच वर्ष की आयु में जब बालक पाठशाला जाना प्रारंभ करता है तब तक उसमें वे सभी संस्कार पड़ चुके होते हैं जो आगे चलकर उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होते हैं। एक बहुत बड़े चिन्तक ने नारी के संदर्भ में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये हैं अगर माता भक्तिवान, श्रद्धावान हो तो उसके द्वारा जो संस्कार बच्चों को मिलते हैं, वह सबसे ज्यादा प्रभावी होते हैं। जीवन में उत्थान के पहियों को ऐसे ही संस्कार तेजी से खींच पाते हैं।

एक मनीषी ने तो यहां तक कहा है कि 'नारी भोजन के साथ संतान को ममता, पति को आत्मीयता सास ससुर को सेवा, देवर ननद को प्रेम एवं आत्मीयता परोसती है। ऐसा भोजन गुणकारी और स्वास्थ्यप्रद होता है। जिससे जीवन निरापद एवं निर्भय रहता है।'

महात्मा गांधी ने नारी के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये 'यदि नैतिक बल को यथार्थ शक्ति माना जाये तो नारी पुरूष से कहीं अधिक साहिसी एवं कर्मठ है। क्या नारी से अधिक सहिष्णुता और कहीं है? उसके बिना तो मनुष्य का अस्तिव ही नहीं रह सकता। यदि हमारा कल्याण अहिंसा में है तो हमारा भविष्य नारी के साथ में है।

देवाधिदेव ऋषभ देव ने कर्म भूमि के प्रारंभ में कर्म प्रधान जीवन शैली को अपनाने का उपदेश दिया उन्होंने समाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या लौकिक षट्कर्मों को करने की प्रेरणा दी तथा राज्य व्यवस्था, समाज संगठन और नागरिक सभ्यता के विकास का बीजारोपण किया। कार्य की अपेक्षा से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में श्रम विभाजन का निर्देश दिया। अपने पुत्रों को सभी कलाओं में निपुण किया विशेष रूप से पुत्रियों को भी शिक्षित किया। उन्होंने दोनों पुत्रियों ब्राम्ही एवं सुन्दरी को क्रमशः लिपी एवं अंक विद्या सिखाई। भगवान ऋषभदेव की दी हुई शिक्षा एवं संस्कारों का ही फल था कि उनकी पुत्रियों ने एक संकल्प किया जो नारी शक्ति की वैचारिक दृढ़ता का प्रतीक है। ब्राम्ही और सुंदरी ने अपने जन्म दाता ऋषभदेव के गौरव की रक्षा के लिए ब्रम्हचर्य व्रत लिया। कालान्तर में आदिनाथ भगवान के चतुर्विध संघ में स्त्री पर्याय के उत्कृष्ट पद आर्यिका दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के पथ की पथिक बनीं।

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जी की पत्नी सीता जी के जीवन पर दृष्टि डालें तो श्रीराम ने लोकोपवाद के भय से सीता जी को वन में भेज दिया तब सीता जी ने उसे अपने कर्मों का फल मान स्वीकार किया और अपने पति श्रीराम को लोकोपवाद के भय से कभी धर्म से विमुख न होने का संदेश कहा यह नारी हृदय की करूणा और धर्म के प्रति आस्था का ही प्रतीक है। मैना सुंदरी के जीवन वृतान्त को जानें तो पता लगता है कि सती **मैना सुंदरी** अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के फल को भोगने की अनिवार्यता जानकर धर्म पर दृढ़ रहकर अपने जीवन साथी (श्रीपाल) की शारीरिक व्याधि कुष्ठ रोग के उपचार में संलग्न रहीं। भगवान महावीर की मौसी राजा चेटक की छोटी पुत्री **चन्दनबाला** का स्मरण करें। युवा अवस्था में ही एक विद्याधर ने उनका अपहरण कर उन्हें निर्जन वन में छोड़ दिया। चन्दना ने धर्म के प्रति दृढ़ता से अपने शील की रक्षा की और संसार से विरक्त होकर आर्यिका दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के मार्ग पर लगीं एवं तीर्थंकर महावीर स्वामी के संघ में प्रधान गणिनी बनीं। नारी रत्न अंजना के जीवन में निहारें तो उनके पति राजकुमार पवनंजय की उनके प्रति विमुखता का जिस तरह से उन्होंने सामना किया वह नारी के धैर्य की पराकाष्ठा ही तो है। इसी श्रृंखला में आती है **रानी चेलना** मगध के **महाराजा श्रेणिक** की जीवन संगिनि थीं। ये वही महाराज श्रेणिक हैं जिन्होंने भगवान महावीर के समवशरण में 60 हजार प्रश्न किये थे। इन्हें सन्मार्ग पर लाने का श्रेय भी चेलना को ही जाता है जिनका हृदय पर कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य कुंदकुंद देव की माता मदालसा जी ने अपने बच्चों को अध्यात्म के वे संस्कार दिये जिनके प्रभाव से उनके पुत्रों ने आठ वर्ष की आयु में दिगम्बरी दीक्षा धारण कर श्रमण संस्कृति को नई उंचाईयाँ प्रदान कीं।

प्रसिद्ध तीर्थ श्रवणबेलगोला में जनमानस के देवता लोक पूज्य **श्री बाहुबाली भगवान** की मनोहारी प्रतिमा का निर्माण श्री चामुण्डराय की माता **'कालल देवी'** के दृढ़ संकल्प एवं आगाध भक्ति का ही परिणाम था। इन्हीं बाहुबली के प्रथम अभिषेक की पूर्णता के लिए जो दैवीय कौतुक हुआ उसे पूर्ण करने के लिए दैदीप्यमान मुख मंडल वाली **गुल्लिका अज्जी** के स्मरण करने से भी नारी शब्द महिमा मंडित है। उसी दक्षिण क्षेत्र में दान **चिंतामणि अत्तिमब्बे** हुई जिन्होंने शास्त्रों की सैकड़ों प्रतियाँ कराकर मंदिरों में स्थापित कीं और हजारों स्वर्ण जिनबिम्ब नव विवाहित जोड़ों को भेंट कर उन्हें प्रेरित किया वे अपने जीवन में एक शास्त्र की पाँच प्रतियाँ करवाकर मंदिरों में अवश्य रखें। पट्ट- **महादेवी शांतला** का जीवन भारतीय संस्कृति की प्राण धारा के रूप में धार्मिक समन्वय का प्रतीक है। पिता शुद्ध शैव और माता परम जिन भक्त थीं वे भी माता की भाँति जिन भक्त निष्ठ थीं। महादेवी शांतला के पति महाराजा बिट्टीदेव जैन धर्म छोड़कर हुए विष्णु भक्त ऐसी परिस्थिति में भी समरसता बनाये रखने वाला संयम और जिनधर्म के प्रति आगाध निष्ठा उनके जीवन में थी।

अब मैं उन महिला रत्नों को नमन करती हूँ जिन्होंने पिच्छी कमण्डलु हाथ में लेकर महाव्रतों की पालना करते हुए हाथ में लेखनी उठाई और अपनी रचनाओं से जैन भारती के भण्डार को समृद्ध किया। मैं पूज्य **ज्ञानमती माताजी** को प्रणाम करती हूँ। जिन्होंने समयसार, नियमसार और मूलाचार जैसे महान ग्रन्थों के सरल भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। उनकी लेखनी से अभी हमें बहुत कुछ मिलने वाला है। पूज्य **सुपार्श्वमती माताजी** को नमन करते हुए मुझे गौरव हो रहा है। माता जी ने मोक्षशास्त्र की विशद व्याख्या करने वाले श्लोक वार्तिकालंकार तथा सर्वार्थसिद्धि जैसे महान ग्रन्थों को हमारे लिए सरल कर दिया। इष्टोपदेश एवं समाधि शतक की हिन्दी टीका हमें उपलब्ध है। मैं पूज्य परम विदुषी आर्यिका **विशुद्धमती माताजी** के चरणों में नमन करती हूं जिन्होंने अपनी श्रावक पर्याय में मुझे गोद में बिठाकर शिक्षा और संस्कार दिये थे। विशुद्धमती माताजी ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

''त्रिलोकसार'', क्षपणासार'', ''सिद्धान्तर दीपक'' और ''तिलोयपण्णत्ति'' जैसे दुरूह तथा गणित प्रधान आगम गन्थों का सरल भाषा में अनुवाद करके हम जैसे अल्पज्ञों पर असीम अनुकम्पा की है। विशुद्धमती माताजी ने छत्तीस वर्ष की तपस्या के उपरान्त ''मरण कण्डिका'' ग्रन्थ की रचना करके अपनी कीर्ति पर कलशारोहण कर दिया। अन्त में परमपूज्य आचार्य श्री वर्धमानसागरजी के अनुशासन में सल्लेखना मरण करके माताजी ने अपनी पर्याय का समापन किया। आज उनकी मानस पुत्री पूज्य आर्यिका प्रशान्तमती माताजी हमारे बीच में अपनी साधना से उनकी कीर्ति कथा कह रही हैं। इन परम विदुषी आर्यिका माताओं के साथ मैं पूज्य आर्यिका विजयमती माताजी, पूज्य आर्यिका स्याद्धादमती माताजी, आर्यिका वर्धितमती माताजी का स्मरण करती हूँ। गोम्मटसार कर्मकाण्ड जी की टीकाकार पूज्य आदिमती माताजी तथा जीवकाण्ड जी की प्रश्नोत्तरी टीकाकार जिनमती माताजी को सविनय नमन करते हुए सभी संयमधारी महिला रत्नों को नमन करती हूँ।

आध्यात्मिक संत पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी की धर्म माता सिंघेन चिरौंजा बाई जी जिन्होंनें वर्णी जी को पुत्रवत स्नेह एवं संरक्षण दिया उनकी ज्ञान पिपासा की पूर्णता में सहायक बनीं। वर्णी जी ने शिक्षा प्राप्त करके बुंदेलखण्ड में अनेंक पाठशालाएँ एवं विद्यालयों की खोलने की प्रेरणा देकर अज्ञान अंधकार को दूर किया। वर्णी जी ने बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष जोर देते हुए कहा कि यदि कन्या शिक्षित होगी तो दो कुलों में ज्ञान की ज्योति फैलेगी। शिक्षा के क्षेत्र में उन नारियों का उल्लेख करना चाहती हूँ जिन्होंने जैन समाज द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं में अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

नारी रत्न मगन बाई जी - तीर्थ क्षेत्र कमेटी के संस्थापक सेठ श्री माणिक चंद्र जी जैन (जेटी) की सुपुत्री थी बाहर वर्ष की आयु में मगन बाई जी का विवाह हो गया। उनके पति व्यसनों में लिप्त रहते थे। मगन बाई 19 वर्ष की आयु में विधवा हो गयीं। पिता की प्रेरणा से वे धर्म मार्ग पर लगीं माँ जिनवाणी के चारों अनुयोगों का गहन अध्ययन किया। अपने घर के एक कमरे में ही बम्बई श्राविकाश्रम एवं विद्यालय की स्थापना की। यह खबर 16 फरवरी 1906 के जैन-गजट में प्रकाशित हुई थी। इनकी प्रेरणा व सहयोग से बम्बई में बारह, बंगाल व बिहार में दो, संयुक्त प्रांत में सात, मध्यप्रदेश में चार, राजपूताना में सात, दिल्ली में दो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्राविकाश्रम और विद्यालय खोले गये। महिला रत्न मगन बाई की सहायिका रही कंकू बाई और ललिता बाई।

नारी रत्न चंदाबाई - उत्तर भारत की प्रथम जागृत महिला बनकर अपने संयम साधना और स्वाध्याय के बल पर अपना विकास कर नारी समाज को सुशिक्षित करने का चंदाबाई ने अपना लक्ष्य रखा। चहँमुखी व्यक्तित्व की धनी चंदाबाई ने ग्रंथों की रचना कर साहित्य सेवा भी की। जैन बालाविश्राम की स्थापना 1921 में हुई थी। जब देश पराधीन था, स्वतंत्रता संग्राम छिड़ा हुआ था महिलाएं अशिक्षित थी नारी रत्न चंदाबाई ने नारी जाति को शिक्षित करने का कार्य बड़ी लगन एवं कुशलता से किया। इस संस्था से हजारों बहिनों ने देश के कोने-कोने में तथा मारीशस, कनाडा में भी अपनी सेवाएं देकर भारतीय संस्कृति का परचम लहराया।

पद्मश्री पण्डिता सुमतिबाई जी शहा - इन्होंने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये ज्ञान ज्योति को घर-घर में जलती रखने के लिए स्वयं को समर्पित किया। श्राविका प्रकाशन विभाग शुरू कर अनेक ग्रंथों का प्रकाशन कराया । महावीर रिर्सच सेंटर की स्थापना करके जैनागम ग्रंथों के एक समृद्ध ग्रंथालय की स्थापना करके साहित्य सेवा की । क्षुल्लिका राजुलमती दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना सोलापुर, महाराष्ट्र में 1924 में हुई थी। यह आश्रम अपंग, अनाथ, परित्यक्ता, विधवा महिलाओं तथा बालमंदिर से महाविद्यालय तक में पढ़नेवाली छात्राओं को प्रवेश देता है।

इन्होनें ने अपना जीवन समर्पित करके इस संस्था को अनुपम ऊँचाई तक पहुँचाया। यहाँ संस्कृत भाषा एवं जैनागम के अध्ययन की सुविधा भी है। इस समय चार हजार से अधिक कन्याओं को शिक्षा प्रदान करने वाली यह जैन जगत की अद्वितीय संस्था के रूप में विकसित हो चुकी है। आज तक हजारों छात्राओं ने इससे लाभ उठाया है तथा वे आज देश तथा विदेश में भी सम्मानित जीवन बिता रहीं हैं। सुमतिबाईजी के बाद कर्मठता की पर्याय बनी ब्रम्हाचारिणी बहिन विद्युल्लता शहा ने दीर्घ काल तक सुमतिबाई शहा के सान्निध्य में अध्ययन, अध्यापन, संपादन, पत्रिकारिता एवं सहित्य सृजन के माध्यम से मराठी जैन वांङ्मय को समृद्ध किया इन्होंने इस संस्था का जिस कुशलता के साथ संचालन किया है वह अनुपम है और सराहनीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महिला रत्न मानुबाई – कम उम्र में विधवा हो जाने के कारण दुःख में डूबी मानुबाई ने तुकोगंज क्षेत्र के कंचनबाग स्थित श्री दिगंबर जैन श्राविकाश्रम इंदौर में पहुँचकर अपनी कार्य क्षमता से वहाँ की उपसंरक्षिका बन गयी। अपने पुरुषार्थ और आत्मविश्वास से ज्ञान के आलोक से श्राविकाश्रम के हर क्षेत्र को आलोकित किया। केवल आश्रम ही नहीं जिनमन्दिर व समवशरण रचना में इन्होंने तन-मन-धन से सहयोग किया। 16 दिसम्बर सन् 1943 को स्थापित श्री दिगम्बर जैन उदासीन श्राविकाश्रम इन्दौर अपने गौरव पूर्ण अतीत के लिए देश भर में विख्यात है। यह बाल विधवा और परित्यक्ता महिलाओं का विश्वस्त आश्रयस्थल है। सभी आचार्यों की शिष्याऐं यहाँ रह रहीं हैं। श्रद्धा के साथ ज्ञान के विकास के लिए बहनें यहाँ चारित्र की साधना करते हुए आवश्यक व्रतों का पालन भी करती हैं।

श्रीमति मखमली देवी जी- दिगम्बर जैन महिलाश्रम, दरिया गंज दिल्ली सन् 1953 में स्थापित हुआ। इस संस्था का मुख्य ध्येय महिलाओं को शिक्षण और रक्षण प्रदान करके उन्हें स्वावलंबी बनाने का है। पचास वर्ष से इस संस्था ने सैकडों लोगों को सहारा और सहयोग प्रदान किया है। इस संस्था की प्रथम जनरल सेक्रेटरी श्रीमती मखमली देवी 36 वर्ष तक सेवा करके इसे प्रगति के पथ पर ले गयी थीं।

विदुषी रत्न ब्रम्हचारणी कमला बाई जी – महिला शिक्षा के लिए समर्पित महाविद्यालय की संस्थापिका संचालिका ब्रम्हचारिणी कमलाबाई जी ने श्री क्षेत्र महावीरजी में 6 बालिकाओं के साथ नारी शिक्षा का बीजारोपण किया था जो आज बढ़कर स्नाकोत्तर महाविद्यालय का रूप ले चुका है। इस विद्यालय ने क्षेत्र के आस पास की आदिवासी बालिकाओं को जैनधर्म के आदर्शों को आत्मसात कराकर सुसंस्कृत किया है। ब्र. कमलाबाईजी को भारत सरकार द्वारा ''स्त्री शौर्य पुरस्कार'' सहित अनेकों पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है।

स्वतंत्रता संग्राम में नारी – अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आजाद कराने में नारियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। स्वतंत्रता संग्राम में जैन महिलाओं का योगदान भी सराहनीय रहा।

श्रीमती कमला जैन – श्रीमती कमला जैन पुत्री-श्री किशोरीलाल जैन मलावली ग्राम, तहसील-लक्ष्मणगढ़ (अलवर) की रहने वाली थीं। आपके पति का छोटी आयु में ही देहान्त हो गया था। उसके बाद आपने देश सेवा का कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। 1946 में अलवर राज्य प्रजामंडल के आन्दोलन 'गैर जिम्मेदार मिनिस्टरों कुर्सी छोड़ो' में आपको भी अन्य महिलाओं के साथ पुलिस ने पकड़कर जंगल में छोड़ दिया था। स्वतंत्र भारत में राजस्थान सरकार ने आपको स्वतंत्रता सेनानी घोषित किया है।

श्रीमती कमला देवी – श्रीमती कमला देवी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में जैन नारियों के गौरव और गरिमा के पद पर सुशोभित कराया। आपका जन्म ललितपुर (उ.प्र.) में 1915 के आसपास हुआ। आपके पति पं. परमेष्ठी दास जी। सूरत और साबरमती जेलों में बंद रहे थे तात्कालिक नारी वर्ग को अभिनव दिशा देते हुए राष्ट्रव्यापी 1942 के जन-आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया और भारत रक्षा कानून की दफा56 के अन्तर्गत जेल में 5 माह रहीं। आपने दफा 144 को भंग करके जूलूसों का नेतृत्व भी किया था। सभाबन्दी कानून भंग करके सभा में भाषण देने के कारण आपको साबरमती जेल में रहना पड़ा। आप प्रगतिशील विचारों की शिक्षित महिला थीं। आपने धर्म-न्याय और साहित्य का खूब अध्ययन किया था और कविता लेखन के क्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त की थी। साहित्यिक प्रतिभा के कारण ही आपको 'राष्ट्रभाषा कोविद्' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्रीमती अंगूरी देवी जैन – श्रीमती अंगूरी देवी का जन्म 19 जनवरी 1910 को श्री होतीलाल जैन के यहां कासगंज में हुआ। आपने कक्षा 5 तक पढ़ाई की। 22 मई 1922 में आगरा के महान् देशभक्त महेन्द्र जी के साथ आपका विवाह हुआ। उनके पति ने स्वयं उन्हें पढ़ाया और पर्दा छुड़ाकर स्वतंत्रता संग्राम में अपने साथ सम्मिलित कर लिया। इस समय भारत में स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आग भड़क उठी थी। अंगूरी देवी को आगरा जिला का चौथा डिक्टेटर नियुक्त किया गया। नमक सत्याग्रह आंदोलन में श्रीमती जैन ने कोतवाली पर धरना दिया, पुलिस के प्रहार के कारण काफी चोटें आयीं और छः माह की सजा व जुर्माना हुआ। 1946-48 के मध्य में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे, आपके पति इन दिनों जेल में नजरबंद थे, उनका निर्देश था कि 'मेरे सभी कार्यकर्ताओं के परिवारों की सहायता व देखभाल करें। इन सब में आप अनवरत लगी रहीं। घर-घर जाकर उनकी सहायता की साथ ही सक्रिय रूप से आंदोलनों में भाग लिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देश की संस्कृति में नारी की हर क्षेत्र में सहभागिता रही है। जैन संस्कृति एवं इतिहास में जीवन के हर पहलू चाहे वह आत्म कल्याण का हो या समाज एवं परिवार के हित का हो अनेक नारी रत्नों ने स्वकल्याण के साथ-साथ अपने परिवार व समाज के हित के लिये अनेक क्षेत्रों में अपना योगदान दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका

भारत देश का स्मरण करते ही तत्क्षण मानस पटल पर उभरती है भारतीय श्रमण संस्कृति। जिसका भारतीय दर्शन एवं संस्कृति में विशेष योगदान रहा, संस्कृति से जुड़े हुए श्रमण शब्द का अर्थ ही है निग्रथं साधु। भगवान आदिनाथ से महावीर स्वामी पर्यन्त 24 तीर्थंकरों की संस्कृति को पंचम काल तक सुरक्षित लाने का दायित्व अनगिनत मुनि व आर्यिकाओं पर रहा। अनादिकाल से जीव का प्रासव्य या परम लक्ष्य आत्म उद्धार ही रहा। वास्तव में जीव का अपने आत्मकल्याण के लिए किया जाने वाला प्रयास ही धर्म है। इस परंपरा में स्व -हित की ही प्रमुखता है, इस पथ पर चलने वाले पथिक के जीवन को देखकर अन्य जीव भी आत्मोद्धार के मार्ग पर लग जाते हैं। किसी सुविज्ञ ने कहा कि -

भगवान आदिनाथ से महावीर स्वामी पर्यन्त चौबिसों तीर्थकरों की संस्कृति को पंचम काल तक सुरक्षित लाने का दायित्व अनगिनत मुनियों एवं आर्यिकाओं पर रहा। चतुर्विध संघ का पद विहार संस्कृति से परिचय और अनेक भाषाओं के विकास में सहायक होता है। त्याग की भूमिका में पुरूष का जो स्थान जैन मुनि रूप में है उसी प्रकार स्त्री पर्याय में त्याग की भूमिका में आर्यिका का स्थान है।

कला बहत्तर जीव की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।।

इसी भावना को लेकर मुनि-आर्यिकाओं का उद्देश्य आत्मकल्याण का रहा। जैसे सूर्योदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है। सभी का जीवन गतिशील हो जाता है। उसी प्रकार साधु जीवन है, जिनके दर्शन से और उनकी चर्या को देखकर मिथ्यात्व नष्ट होने लगता है, ज्ञानज्योति प्रकाशित होने लगती है, समाज और राष्ट्र में एक नवीन स्फूर्ति आ जाती है। (मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान बनता है।) सर्वधर्म समभाव में जैन मुनि, आर्यिकाओं का विशेष योगदान रहा, अपने उपदेशों में प्राणी मात्र के कल्याण की प्रमुखता रखते हुए, आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज ने जैनधर्म को विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। चतुर्विध संघ का पद विहार संस्कृति से परिचय प्राप्त कराने में और अनेक भाषाओं के विकास में बहुत सहायक होता है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक देश को एकता के सूत्र में बांधने में इसकी अहम् भूमिका है। पुरुष एवं नारी एक रथ के दो पहिए हैं। जीवन के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिक कार्यों में दोनों की समान सहभागिता स्वीकार की गई है। आत्मविकास के क्षेत्र में जैन आगम में बहुत ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों को अपनी-अपनी शारीरिक संरचना के अनुसार अपनी आत्मा को परमात्म पद पर स्थित करने का समान अधिकार दिया है। इस विकास यात्रा में सम्पूर्ण पापों का त्याग कर महाव्रत धारण करके ही सफलता पाई जा सकती है। यह योग्यता मात्र मनुष्यों में ही है वह यदि सम्यक् पुरूषार्थ करे तो अपने कर्मों का नाश कर सकता है और वही संसारी जीव मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा बन सकता है। जैन आगम के अनुसार प्रत्येक जीव में परमात्मा बनने की शक्ति बीज के रूप में है। त्याग की भूमिका में जैन मुनि का जो स्थान है उसी प्रकार स्त्री पर्याय में त्याग की भूमिका में आर्यिका का स्थान है गृहस्थ के लिए दोनों समान रूप से पूज्य है मुनि निर्ग्रन्थ दिगम्बर होते हैं तथा आर्यिका अपनी शारीरिक संरचना की वजह से दो वस्त्र (साड़ी) रखती हैं मुनि खड़े होकर आहार एवं आर्यिका बैठकर आहार करती हैं। बाकी दोनों की चर्याएँ प्रायः समान होती हैं त्याग की अपेक्षा से मुनिराजों को महाव्रती और आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रती कही गई हैं।

पंच महाव्रत, संचरण, समिति पंचपरकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।

-बारह भावना

भूधरदास जी कहते हैं अनेक जन्मों के कर्मों की निर्जरा के लिए ज्ञान के साथ उत्कृष्ट चारित्र भी अनिवार्य है। तप के द्वारा पूर्वोपार्जित कर्म समाप्त होंगे और सम्यक ज्ञान के रहते हुए नवीन कर्म नहीं बधेंगें। ऐसी आस्रवरहित या संवर सहित निर्जरा ही अक्षय सुख का साधन बन सकती है। इसी उद्देश्य को लेकर पुरूष हो या नारी व्रतों को धारण कर मोक्षपथ के पथिक बनते हैं। इस युग के आंरभ में भगवान आदिनाथ ने मोक्षमार्ग प्रशस्त किया उनकी पुत्री ब्राम्ही एवं सुंदरी ने भगवान के समवशरण में आर्यिका दीक्षा ली अपने त्याग और तपस्या के बल से ब्राम्ही आर्यिका संघ की गणिनी बनी जिनागम के अनुसार दीक्षा ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक है। कवि भूधरदास जी ने पार्श्वपुराण में वैराग्य भावना के अंतर्गत कहा-

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागैं।
काहे की शिव साधन करते, संयम सों अनुरागैं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि संसार में ही वास्तविक सुख होता तो तीर्थंकर जिन्हें स्वर्ग तुल्य सुख उपलब्ध थे फिर भी उन्हें संयम ही प्रिय रहा क्योंकि सच्चा सुख मोक्ष ही है इसीलिए वे भी निरंतर मोक्ष के साधन दीक्षा को धारण कर तपस्या करके अपने पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष प्राप्ति का उपाय करते हैं। तीर्थंकरों ने केवलज्ञान होने के उपरांत अपनी दिव्यध्वनि में चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका) की परंपरा के मार्ग को प्रशस्त किया। जिस प्रकार मुनि पद के लिए क्रम है पहले ब्रम्हचारी, क्षुल्लक, ऐलक मुनि फिर उपाध्याय और आचार्य बनते हैं उसी प्रकार आर्यिका पद के लिए भी क्रम बना पहले ब्रम्हचारिणी क्षुल्लिका आर्यिका बाद में गणिनी पद होता है। तीर्थंकर भगवंतों के समय जो पहली आर्यिका बनती थी वो भगवान के समवशरण में दीक्षा लेती थीं। जैसे आदिनाथ भगवान के समवशरण ब्राम्ही, सुन्दरी से लेकर भगवान महावीर के समवशरण में चन्दना दीक्षित हुई और उन्होंने ही गणिनी पद प्राप्त कर अनेक स्त्रियों को दीक्षित किया प्राचीन काल में प्रायः सभी महापुरूषों की पत्नियों ने किसी न किसी आर्यिका से दीक्षा लेकर तपश्चरण कर सद्गति को पाया। आचार्य जिनसेन स्वामी ने हरिवंश पुराण में समवशरण में आर्यिकाओं का स्वतंत्र स्थान बताते हुआ कहा

ततो ऽ लंकृतनारीभिरार्यिकाततिराबभौ।
स्फुरद्विद्युभ्दिराश्लिष्टा शारदीव घनावली।।

-आचार्य जिनसेन , हरिवंशपुराण, 2/78

तीर्थंकर भगवान के समवशरण की बारह सभाओं में से तृतीय सभाकक्ष में नाना प्रकार के अलंकारों से अलंकृत स्त्रियों के साथ आर्यिकाओं की पंक्ति इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि चमकती हुई बिजलियों से आलिंगित शरद् ऋतु की मेघपंक्ति सुशोभित होती है।

हरिवंश पुराण में आचार्य जिनसेन महाराज ने कहा कि महामुनिराजों की भांति आर्यिकाएँ भी उपसर्ग विजयी होती हैं उन्होंने कहा-श्रीकृष्ण की बहिन ने अपनी चपटी नासिका देखकर दीक्षा धारण करली और अपनी कोमल-कोमल अंगुलियों से केश-लोंच कर लिये।

व्यपहृतभूषणस्त्रगियमात्मकरांगुलिभि-
र्निकचित केशभार, निखिलोत्खननं तु तदा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रविदधती बभौ, कुसुम कोमलबाहुलता,
स्फुटमिव धी-कुटी कुटिल-शल्य-कुलोद्धरणम।।22।।

-हरिवंशपुराण सर्ग 49

एक बार वे आर्यिका अन्य आर्यिकाओं के साथ तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा और निर्वाण कल्याणक की भूमियों में विहार करती हुई विन्ध्याचल के विशाल वन में जा पहुँची। निर्विकल्पचित्त को धारण करती हुई प्रतिमा तुल्य वह आर्यिका एक रात किसी मार्ग के निकट ध्यानस्थ विराजमान हो गई। थोड़ी देर बाद वहाँ एक सिंह ने आकर घोर उपसर्ग प्रारंभ कर दिया। उपसर्ग देख उन्होंने बड़े शान्त भाव से समाधि धारण कर ली। जीवन भर के लिए आहार-जल का त्याग कर दिया और ध्यानस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्ग गईं। सिंह ने अपने नख, दाँत और डाढ़ों से उनका सम्पूर्ण शरीर विदीर्ण कर दिया तथापि उन्होंने गृहीत समाधि नहीं छोड़ी-

प्रशम समाधिमागनशन-स्थितिमामरणा-
दुपगत पुण्डरीकादुरुपल्लव- चण्डतया।
स्वयमुपपद्य सा दिवमगात्प्रतिमाप्त-मृति-
र्मधुमथन-स्वसा स्खलति न स्थितितः सुजनः।।30।।
नख-मुख-दंष्ट्रिका-विकटकोटिविपाटितया,
यदपि कलेवर-खण्डमुपार्जित -धर्मतया।
मृतिमितया विमुक्तमविमुक्त समाधितया। ।।31।।

- हरिवंश पुराण सर्ग 49

इस प्रकार सिंह जैसे हिंसक जीवों के उपसर्ग से भी चलायमान न होने वाली आर्यिकाएँ हो चुकी हैं। वर्तमान काल में भी आर्यिकाएँ परिषहों को सहन करती हैं और समाधि मरण कर अपने संसार को सीमित करती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गरिमामय अतीत-तीर्थंकर आदिनाथ से महावीर तक

प्रसिद्ध आर्यिकायें

आर्यिका पद नारी जीवन के अध्यात्मिक विकास का चरमोत्कर्ष है। आर्यिकाओं की दीक्षा के लिए जैनेश्वरी दीक्षा शब्द भी आया है। इन्हें ''महाव्रत-पवित्रांगा'' भी कहा है श्रमणी, साध्वी आदि नाम भी कहे हैं। ये आर्यिकायें इंद्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि महापुरुषों द्वारा वंदनीय रही हैं। पूर्व काल में आर्यिकायें आचार्यों के संघ में रहती थीं और पृथक भी रहती थीं। वे संघ सहित विचरण करती थीं। प्रत्येक तीर्थंकर के समवसरण में आर्यिकाओं की संख्या मुनियों से अधिक रही है। उनमें तप और त्याग की भावना प्रबल थी वे धर्म और संस्कृति की अपूर्व सेवा करती थीं तथा चारित्रिक दृढ़ता में अग्रणी थीं। ये उनके आत्मबल का प्ररिचायक है। अतीत में अनेक आर्यिकाओं ने अपने व्यक्तित्व और सत्कार्यों से जीवन को संवारा एवं आज भी हमारा मार्ग दर्शन कर रही हैं।

गणिनी आर्यिका ब्राम्ही - सुन्दरी

किसी भी राष्ट्र के अभ्युदय में भाषा का विशेष महत्व होता है कहा जाता है ''साहित्य समाज का दर्पण है।'' भगवान आदिनाथ ने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राम्ही एवं सुन्दरी को लिपि एवं अंक विद्या का सम्पूर्ण ज्ञान कराकर विश्व में नारी की प्रतिष्ठा को रेखांकित किया।

आदि ब्रम्हा तीर्थंकर की दो रानियाँ थीं यशस्वती और सुनन्दा। बड़ी रानी यशस्वती ने भरत, वृषभसेन आदि सौ पुत्रों को जन्म दिया, एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम ब्राम्ही रखा गया। सुनन्दा के कामदेव बाहुबलि पुत्र हुए और एक कन्या हुई जिसका नाम सुन्दरी रखा गया। एक दिन तीर्थंकर ऋषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे। ये दोनों पुत्रियाँ मांगलिक वेषभूषा में पिता के निकट पहुँचीं। विनय के साथ उन्हें प्रणाम किया तब तीर्थंकर देव ने शुभ आशीर्वाद देकर उन दोनों पुत्रियों को उठाकर प्रेम से अपनी गोद में बिठा लिया। ''पुत्रियों ! तुम दोनों को शील और विनय आदि गुणों के कारण तुम्हारी छोटी सी अवस्था और यह अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जाय तो तुम दोनों का यह जन्म सफल हो सकता है। इसलिए हे पुत्रियों ! तुम विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो, क्योंकि तुम्हारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्या ग्रहण करने का यही काल है।'' तीर्थंकर ऋषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने चित्त में स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया पुनः सिद्धं नमः' मंगलाचरण करके अपनी दाहिनी तरफबैठी हुई ब्राम्ही को दाहिने हाथ से ''अ आ इ ई'' आदि वर्णमाला लिखकर लिपि लिखने का उपदेश दिया और बाईं तरफबैठी सुन्दरी पुत्री को बायें हाथ से 1, 2, 3, आदि अंक लिखकर गणित विद्या को सिखाया। इस प्रकार ब्राम्ही ने आदि ब्रम्हा पिता के मुख से स्वर व्यंजन युक्त विद्या सीखी इसी कारण आज वर्णमाला लिपि को ब्राह्मी लिपि कहते हैं। तथा सुन्दरी ने गणित शास्त्र को अच्छी तरह से सीखा था। वांङ्.मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है। व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वांङ्.मय कहते हैं। उन दोनों पुत्रियों ने सरस्वती देवी के समान अपने पिता के मुख से संशय, विपर्यय आदि दोषों से रहित शब्द तथा अर्थरूप समस्त वांङ्.मय का अध्ययन किया था। उस समय स्वयंभू ऋषभदेव का बनाया हुआ एक बड़ा भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था। उसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और यह समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर था।

प्रभु ने अनेक अध्यायों में छन्दशास्त्र का उपदेश दिया था और उसके उक्त, अत्युक्त आदि छब्बीस भेद भी दिखलाये थे। अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान् ने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वित्रिलघुक्रिया, संख्या और अध्वयोग, छन्दशास्त्र के इन छह प्रत्ययों का भी निरूपण किया था। प्रभु ने अलंकार संग्रह ग्रन्थ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था। उनके शब्दालंकार और अर्थालंकार रूप दो भागों का विस्तार के साथ वर्णन और माधुर्य ओज आदि दश प्राण (गुणों) का भी निरूपण किया था। ब्राम्ही और सुन्दरी दोनों पुत्रियां पदज्ञान-व्याकरणज्ञान में निपुण हुईं। समस्त विद्यायें और कलायें अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गई थीं। इस प्रकार गुरू अथवा पिता के अनुग्रह से समस्त विद्याओं को प्राप्त कर वे दोनों इतनी अधिक ज्ञानवती हो गई थी कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी। ब्राम्ही और सुन्दरी समाज में उच्च आदर्श को स्थापित करने वाली श्रेष्ठ श्राविका थीं। वृषभदेव के दीक्षा लेने के पश्चात् ब्राम्ही औ र सुन्दरी ने भी समवशरण में जाकर दीक्षा ले ली। आचार्य जिनसेन स्वामी आदि पुराण में कहते हैं कि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतस्यानुजा ब्राम्ही, दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात।
गणिनीपदमार्याणां, सा भेजे पूजितामरैः ।।

भरत की छोटी बहिन ब्राह्मी भी गुरूदेव की कृपा से दीक्षित होकर सभी आर्यिकाओं के मध्य गणिनी पद को प्राप्त हुई तथा देव-समूह ने आकर उनकी पूजा की।

आर्यिका सुलोचना

इसी भरत क्षेत्र में काशी नाम का देश है। उसमें वाराणसी नाम की नगरी है। तीर्थंकर ऋषभदेव के द्वारा राज्य को प्राप्त राजा अकम्पन उस नगरी के स्वामी थे। इनके सुप्रभा नाम की देवी थी। नाथवंश के अग्रणी राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा ने हेमांगद आदि हजार पुत्रों को जन्म दिया तथा सुलोचना व लक्ष्मीमती इन दो पुत्रियों को जन्म दिया। धीरे-धीरे पुत्री सुलोचना ने किशोरावस्था को प्राप्त कर सर्वविद्या और कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। उसने जिनेन्द्र भगवन् की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमायें बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण के बनवाये थे। उनकी प्रतिष्ठा कराके महाभिषेक किया था। वह प्रतिदिन उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी। अर्थ पूर्ण स्तुतियों से अर्हतदेव की भक्ति पूर्वक स्तुति करती, पात्रदान देती थी। सुलोचना ने हस्तिनापुर के राजा जयकुमार के गले में वरमाला पहनाई जो चक्रवर्ती भरत के सेनापति थे । चक्रवर्ती की दिग्विजय की सफलता में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। एक सेनापति रत्न नाम से चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से एक रत्न थे। एक बार जयकुमार अपने अनेक भाइयों और रानियों के साथ भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में पहुँचे। वहाँ दर्शन, पूजन के बाद उपदेश सुना। विरक्त होकर अपने अनेक भाइयों और चक्रवर्ती के अनेक पुत्रों के साथ जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। तत्क्षण ही जयकुमार को मनःपर्ययज्ञान और ऋद्धियाँ प्रगट हो गई और वे भगवान् के इकहत्तरवें (71वें) गणधर हो गये।

पति के वियोग से दुःख को प्राप्त हुई सुलोचना को चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा ने समझाया तब उसने भी विरक्त हो ब्राम्ही आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण करली। दीक्षा लेकर के सुलोचना ने तपश्चरण के साथ ही ज्ञान की भी विशेष आराधना की जिससे उन्हें ग्यारह अंगों का ज्ञान हो गया। हरिवंशपुराण में कहा है-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःसंसार स्वभावज्ञा, सपत्नीभिः सितम्बरा।
ब्राम्हीं च सुन्दरीं श्रित्वा, प्रवव्राज सुलोचना ।।51।।
द्वादशांङ्‌गध,रो जातः, क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी।
एकादशांङ्‌गभृ,ज्जाता, साऽऽर्यिकाऽपि सुलोचना।।52।।

-हरिवंश पुराण सर्ग-92

संसार के दुष्ट स्वभाव को जानने वाली सुलोचना ने अपनी सपत्नियों के साथ सफेद वस्त्र धारण कर लिये और ब्राम्ही तथा सुन्दरी के पास जाकर दीक्षा ले ली। मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही जाकर द्वादशांग के पाठी होकर भगवान के गणधर बन गए और आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगों की धारक हो गई।

आर्यिका सीता

मिथिलापुरी में राजा जनक राज्य करते थे। उनकी रानी विदेहा पातिव्रत्य आदि गुणों से परिपूर्ण परमसुन्दरी थी। एक समय वह गर्भवती हुई। नव महीने बाद उसने पुत्र और पुत्री ऐसे युगल संतान को जन्म दिया। पुत्र के जन्म लेते ही उनके पूर्वभव के बैरी महाकाल नामक असुरकुमार देव ने उस बालक का अपहरण कर लिया । रानी विदेहा पुत्र के अपहरण से बहुत ही दुःखी हुई किन्तु राजा जनक आदि परिजनोंके समझाने पर शांत हो पुत्री का लालन पालन करने लगीं। इस कन्या का नाम सीता रखा गया। सीता के स्वयंवर की घोषणा हुई। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी वहाँ पर आ गये। उस स्वयंवर में कोई भी राजपुत्र उस धनुष के निकट भी आने में समर्थ नहीं हो सका, किन्तु महापुरुष राम ने उस वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर सीता का वरण किया । लक्ष्मण ने सागरावर्त धनुष चढ़ाकर चन्द्रवर्धन की अठारह कन्यायें प्राप्त कर लीं। तथा जनक के भाई राजा कनक ने अपनी पुत्री लोकसुन्दरी दशरथ के पुत्र भरत के लिये समर्पित की। वहां मिथिला नगरी में इन दशरथ के पुत्रों के विवाह सम्पन्न हुए। राम, लक्ष्मण, भरत आदि अपनी-अपनी रानियोंके साथ अयोध्या नगरी वापस आ गये।

विद्याधरों की सहायता से रावण द्वारा सीता का अपहरण जानकर श्रीरामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजा। हनुमान ने वहाँ जाकर सीता को रामचन्द्र का समाचार दिया। तब सीता ने ग्यारह उपवास के बाद पारणा की। सुग्रीव आदि विद्याधरों की सहायता से राम, लक्ष्मण ने लंका को घेर लिया। भयंकर युद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ। अन्त में रावण ने अपना चक्र लक्ष्मण पर चला दिया। वह चक्ररत्न लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उनके पास ठहर गया और लक्ष्मण ने उसी चक्र से रावण का वध कर दिया। इसके बाद राम सीता से मिले, तब देवों ने भी सीता के शील की प्रशंसा करते हुए उन पर पुष्पवृष्टि की। लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर त्रिखण्ड के अधिपित राम-लक्ष्मण छह वर्ष तक वहीं रहे। पुनः माता की याद आने पर अयोध्या आ गये। तब भरत ने दिगम्बरी दीक्षा ले ली। रामचन्द्र आठवें बलभद्र और लक्ष्मण नारायण प्रसिद्ध हुए। श्रीराम ने अपनी आठ हजार रानियों में सीता को पट्टरानी बनाया। एक बार सीता ने स्वप्न में देखा ''मेरे मुख में दो अष्टापद प्रविष्ट हुए हैं और मैं पुष्पक विमान से गिर गई हूँ।'' उसने इनका फल श्रीराम से पूछा। रामचन्द्र ने कहा-''तुम युगल पुत्रों को जन्म दोगी।'' तथा दूसरे स्वप्न का फल अनिष्ट जानकर उसकी शांति के लिए जिन मंदिर में पूजन, अनुष्ठान कराया गया। एक बार राम की सभा में कुछ प्रमुख सभासदों ने कहा कि - ''प्रभो! इस समय प्रजा मर्यादा रहित होती जा रही है। दुष्ट लोग बलात् दूसरे की स्त्री का हरण कर लेते हैं। प्रायः लोग कह रहे हैं कि राजा दशरथ के पुत्र राम ज्ञानी होकर भी रावण के द्वारा हरण की हुई सीता को वापस ले आये हैं। '' इस बात को सुनकर रामचन्द्र एक क्षण विषाद को प्रात हुए। प्रजा को आश्वासन देकर भेज दिया। और स्वयं यह निर्णय लिया कि सीता को वन में भेज दिया जाय। लक्ष्मण के बहुत अनुनय विनय करने पर भी रामचन्द्र नहीं माने और कृतांतवक्त्र सेनापति को बुलाकर समझाकर उसके साथ सीता को तीर्थवंदना के बहाने घोर जंगल में छुड़वा दिया। वहाँ सेनापति से वन में छोड़ आने का समाचार सुनकर सीता बहुत ही दुःखी हुई फिर भी उन्होंने कहा- ''सेनापते ! तुम जाकर श्री रामचन्द्र से कहना कि जैसे लोकोपवाद के डर से मुझे छोड़ दिया है ऐसे ही जिनधर्म को नहीं छोड़ देना।'' और सेनापति को विदा कर दिया। उस समय सीता गर्भवती थीं और वन में घोर विलाप कर रही थीं। वहाँ जंगल में रूदन सुनकर पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ उसके पास आया और सीता को अपनी बहन के समान समझकर सॉन्त्वना देकर पुण्डरीकपुर लिवा लाया। वहाँ सीता ने युगल पुत्रों को जन्म दिया। जिनका नाम अनंगलवण और मदनांकुश रखा गया। इन पुत्रों को सिद्धार्थ नाम के क्षुल्लक ने पढ़ाया। एक बार नारद ने आकर इन दोनों के सामने राम का वैभव बताया तथा सीता के वन में छोड़ने की बात कही। तब ये दोनों बालक सीता के बहुत मना करने पर भी राम से युद्ध करने के लिए चल पड़े। वहाँ पर दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्ष में किसी की हार जीत न देखकर नारद ने रामचन्द्र से कहा कि - ''ये दोनों आपके पुत्र हैं। सीता से जन्मे हैं।''

पिता-पुत्र मिलन के बाद सुग्रीव, हनुमान आदि राम की आज्ञा लेकर सीता को अयोध्या ले आये। राम ने सीता की शुद्धि के लिए अग्नि परीक्षा लेना चाहा। तब विशाल अग्निकुण्ड निर्मित हुआ। सीता ने कहा- ''हे अग्निदेवते ! यदि मैंने स्वप्न में भी परपुरूष को नहीं चाहा हो तो तू जल हो जा अन्यथा मुझे जला दे।'' इतना कहकर वह अग्नि में कूद पड़ी। शील के प्रभाव से तत्क्षण ही अग्नि जल हो गई और देवों ने सीता को कमलासन पर बिठा दिया। तब रामचन्द्र ने सीता से क्षमायाचना की। अग्निपरीक्षा के बाद जब श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से घर चलने का विशेष आग्रह किया तब सीताजी ने उत्तर दिया कि -

योनिलक्षाध्वसंक्रान्त्या खेदं प्राप्ताऽस्म्यनुत्तमम।
साहं दुःखक्षयाकाङ्क्षा, दीक्षां जैनेश्वरीं भजे।।75।।

-पद्मपुराण, पर्व 105

हे बलभद्र! लाखों योनियों के मार्ग में भ्रमण करती-करती इस भारी दुःख को प्राप्त हुई हूँ। अब मैं दुखों का क्षय करने की इच्छा से जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ। सीता ने जाकर 'पृथ्वीमती' आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ले ली। बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तप करके सल्लेखना धारण कर ली। तैंतीस दिन के बाद इस उत्तम सल्लेखना से शरीर को छोड़कर अच्युत (16वें) स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। सम्यग्दर्शन और संयम के माहत्म्य से स्त्रीलिंग से छूटकर देवेन्द्र की विभूति का वरण कर लिया। यह सीता का जीव अच्युत स्वर्ग के सुखों का अनुभव कर भविष्य में इसी भरत क्षेत्र में चक्ररथ नाम का चक्रवर्ती होगा। तपोबल से अहमिन्द्र पद को प्राप्त करेगा। पुनः जब रावण का जीव तीर्थंकर होगा तब यह अहमिन्द्र उनका प्रथम गणधर होकर उसी भव से निर्वाण प्राप्त कर लेगा।

आर्यिका मन्दोदरी

रावण की मृत्यु के बाद इन्द्रजीत और मेघवाहन दोनों पुत्रों ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली तब रानी मन्दोदरी को शोक में विव्हल देख आर्यिका शशिकांता ने उसे समझाकर प्रतिबोधित किया। उस समय परम सम्वेग को प्राप्त हुई रानी मन्दोदरी ने तथा रावण की बहन चन्द्रनखा ने उन्हीं शशिकांता आर्यिका के पास 48,000 स्त्रियों सहित आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका कैकयी

भगवान देशभूषण केवली के समवशरण में श्री भरत ने दीक्षा ग्रहण कर ली। भरत के साथ एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली। उस समय माता कैकयी शोक से विह्वल हो रही थी। राम और लक्ष्मण के समझाने पर सम्वेग को प्राप्त हुई ''कैकयी'' ने तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा धारण की।

आर्यिका बन्धुमती

हनुमान ने धर्मरत्न नामक मुनि के पास दीक्षा ले ली। उनके साथ 750 विद्याधर राजाओं ने भी अपने पुत्रों को राज्य छोड़कर मुनिपद ग्रहण किया, तब हनुमान की रानियों ने तथा अन्य राजस्त्रियों ने भी गणिनी आर्यिका ''बन्धुमती जी'' के पास जाकर भक्ति पूर्वक उन्हें नमस्कार कर उनकी उत्तम विधि से पूजा की। तदनन्तर उन्हीं के पास आर्यिका दीक्षा धारण की।

आर्यिका श्रीमती

श्रीराम ने आकाशगामी महा मुनि-सुव्रत आचार्य से निर्ग्रथं दीक्षा ली। इस संघ में हजारों मुनि विद्यमान थे। शत्रुघ्न, विभीषण, नल, नील, सुग्रीव आदि राजाओं ने भी दीक्षा ले ली। उस समय सोलह हजार से अधिक साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख स्त्रियाँ ''श्रीमती'' नामक श्रमणी के पास आर्यिका हो गईं। ये आर्यिकाएँ मुनि सुव्रतनाथ तीर्थंकर के बाद के काल में हुई।

गणिनी आर्यिका राजीमती

नेमिनाथ के गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही कुबेर ने समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के आँगन में रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दिया। कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन अहमिन्द्र का जीव जयंत विमान से च्युत होकर शिवादेवी के गर्भ में आ गया। उसी समय इन्द्रों ने यहाँ आकर भगवान् का गर्भ महोत्सव मनाया। नव महीने बाद श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन पुत्र का जन्म होते ही देवों ने आकर उसे सुमेरु पर्वत पर ले जाकर 1008 कलशों से जन्म अभिषेक करके जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया। पुनः नेमिनाथ यह नामकरण करके जिनशिशु को लाकर माता-पिता को सौंप दिया। नेमिनाथ की आयु एक हजार वर्ष की थी और शरीर की ऊँचाई दस धनुष थी। क्रम से ये तीर्थंकर युवावस्था को प्राप्त हो गये। नेमिकुमार के विवाह के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए श्री कृष्ण स्वयं राजा उग्रसेन के घर पहुँचे और बोले-''आपकी पुत्री राजीमती तीन लोक के नाथ तीर्थंकर नेमिकुमार की प्रिया हो।'' उग्रसेन ने कहा-''हे देव ! तीन खण्डों में उत्पन्न हुए रत्नों के आप ही स्वामी हैं। आपकी आज्ञा मुझे सहर्ष स्वीकार है।'' राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण आदि बारात लेकर (जूनागढ़) आ गये। इसी मध्य श्रीकृष्ण ने सोचा-इन्द्रों द्वारा पूज्य तीर्थंकर नेमिनाथ महाशक्तिमान हैं कहीं मेरा राज्य न ले लें। .... पुनः सोचा-''ये नेमिकुमार कुछ वैराग्य का कारण पाकर दीक्षा ले सकते हैं।'' ऐसा सोचकर एक षड़यंत्र किया और बहुत से मृग आदि पशु इकटठे कराकर, एक बाड़े में बन्द करा कर द्वारपाल को समझा दिया।

जब नेमिकुमार उधर से निकले, बाड़े में बन्द और चिल्लाते हुए पशुओं को देखकर पूछा-''इन्हें क्यों बन्द किया गया है?'' द्वारपाल ने कहा - ''प्रभो! आपके विवाहोत्सव में इनका व्यय (वध) करने के लिये इन्हें इकटठा किया गया है।'' उसी क्षण अपने अवधिज्ञान से श्रीकृष्ण की सारी चेष्टा जानकर तथा पूर्वभवों का भी स्मरण कर नेमिनाथ विरक्त हो गये। तत्काल ही लौकांतिक देव आकर स्तुति करने लगे। पुनः देवों ने आकर भगवान् की पालकी उठायी और प्रभु दीक्षा के लिये वन में पहुँच गये। वह वन सहस्राम्र नाम से प्रसिद्ध था जो कि आज सहसा वन कहलाता है। वहाँ पर श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन दीक्षा ले ली। तीन दिन के उपवास के बाद उनका प्रथम आहार राजा वरदत्त के यहाँ हुआ उस समय उनके घर में रत्नों की वर्षा हुई। छप्पन दिन बाद भगवान को आसोज वदी एकम के दिन केवलज्ञान प्रगट हो गया। हरिवंशपुराण में लिखा है कि - ''नेमिनाथ के दीक्षा लेने के बाद राजीमती बहुत ही दुःखी हुई और वियोग के शोक से रोती रहती थी। भगवान् को केवल ज्ञान होने के बाद समवसरण में राजावरदत्त ने दीक्षा ले ली और भगवान् के प्रथम गणधर हो गये। उसी समय छह हजार रानियों के साथ दीक्षा लेकर राजीमती आर्यिकाओं के समूह की गणिनी हुईं।''

आर्यिका द्रौपदी

द्रौपदी ने पूर्व पयार्य में जब ब्राम्हण परिवार में नागश्री की पयार्य में थीं तब धर्मरूचि नामक महा मुनिराज को क्रुद्ध अवस्था में विषमिश्रित आहार दे दिया था। पाप के फल से नागश्री नरक में, त्रस-स्थावर पयार्यों में परिभ्रमण करती रहीं। जब पापोदय कुछ कम हुआ तो चंपापुर नगर में चण्डालिनी हो गई। मुनिराज का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपदेश सुनकर उसने मद्य मांस मधु का त्याग कर दिया जिसके प्रभाव से सुबन्धु सेठ की सुकुमारी पुत्री हुई। दीक्षा लेकर देवी हुई वहाँ से च्युत होकर कंपिला नगर के राजा द्रुपद की रानी दृढ़रथ के द्रौपदी नाम की पुत्री हुई यही द्रौपदी अर्जुन की महारानी हुई। भगवान् नेमिनाथ के समवसरण में अठारह हजार मुनि, चालीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। उस काल में कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी आदि ने गणिनी राजीमति से ही दीक्षा ली थी। अन्त में नेमिनाथ ने आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन गिरनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी ये चारों आर्यिकाओं ने धर्मध्यान से सल्लेखना करके स्त्रीवेद का नास कर सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। वहाँ की 22 सागरोपम आयु को पूर्ण कर पुरूष होकर तपश्चरण करके निर्वाण प्राप्त करेंगी। पूर्व जन्म में जो इसने वसंतसेना वेश्या जैसा सौभाग्य प्राप्त करने का भाव कर लिया था उसी से उसे द्रौपदी पर्याय में पंचभर्तारी का असत्य आरोप लगा है। वास्तव में द्रौपदी सती थी। युधिष्ठिर और भीम उसके जेठ थे और नकुल, सहदेव देवर थे। फिर भी पूर्वकृत कर्म के उदय से उसे अकारण ही अवर्णवाद-निन्दा को सहना पड़ा है।

आर्यिका कुन्ती

कुशार्य देश के शौर्यपुर नगर में राजा अंधकवृष्टि की रानी सुभद्रा के दस पुत्र और दो पुत्री कुंती और माद्री हुई। ये पुत्रियाँ राजा पाण्डु को ब्याही गंइ। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री से नकुल और सहदेव ये पुत्र हुए जो पाँच पाण्डव कहलाये। किसी समय पाण्डु राजा ने संन्यास विधि से मरण कर सौधर्म स्वर्ग प्राप्त किया। उसी समय पति के साथ माद्री ने संन्यास विधि से प्राण छोड़कर सौधर्म स्वर्ग प्राप्त किया था और नकुल, सहदेव को कुन्ती के पास छोड़ दिया था। जब पांचों पाण्डु पुत्रों ने भगवान नेमिनाथ के पास दीक्षा ली तब कुन्ती ने भी राजीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण करके स्त्री पर्याय को छेदकर सौलहवें स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हुई।

सत्यभामा आदि आठ आर्यिकायें

समवशरण में श्रीकृष्ण के पूछने पर भगवान् की दिव्यध्वनि खिरी - हे भद्र ! बारह वर्ष बाद मदिरा का निमित्त पाकर यह द्वारावती नगरी द्वीपायन के द्वारा नष्ट हो जायेगी। तथा जरत्कुमार के द्वारा श्रीकृष्ण का मरण होगा। तीर्थंकर भगवान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का यह उपदेश सुनकर द्वीपायन तो उसी समय संयम धारण कर दूसरे देश को चले गये तथा जरत्कुमार कौशम्बी के वन में जा पहुँचा। तथा श्रीकृष्ण ने तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारणभूत सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन किया तथा स्त्री बालक आदि सबके लिये घोषणा कर दी कि मैं तो दीक्षा लेने में समर्थ नहीं हूँ परन्तु जो समर्थ हों - लेना चाहें उन्हें मैं रोकता नहीं हूँ। हरिवंशपुराण में बतलाया गया है कि श्रीवरदत्त गणधर ने इन रानियों के पूर्व भव सुनाये और बतलाया कि तुम सभी इसी भव में तपश्चरण कर स्वर्ग में देवपद को प्राप्त करोगी। पश्चात् वहाँ से च्युत होकर मनुष्य पर्याय में आकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर उसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगी। तभी सत्यभामा , रूक्मिणी, जाम्बवती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गांधारी, गौरा, पद्मावती, इस प्रकार आठों रानियों ने श्री कृष्ण से आज्ञा लेकर आर्यिका राजीमती के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली । सम्यत्व और संयम के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर स्वर्ग में देवपद को प्राप्त कर लिया। आगे ये तीसरे भव में नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगी।

आर्यिका रामदत्ता

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुर नगर में राजा सिंहसेन राज्य करते थे। उनकी रामदत्ता रानी पातिव्रत्य गुणों की खान थी। एक दिन राजा सिंहसेन की मृत्यु का समाचार सुनकर दांतमती और हिरण्यमती नाम की संयम धारण करने वाली आर्यिकायें रानी रामदत्ता के पास आईं। रामदत्ता भी उनका धर्मोपदेश सुनकर उन्हीं से संयम ग्रहण कर आर्यिका हो गईं। दीक्षा लेने के बाद घोर तपश्चरण किया जिसके फलस्वरूप समाधिमरण के बाद दशवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया। यह रामदत्ता का जीव नवमें भव में भगवान विमलनाथ का मेरू नाम का गणधर हुआ जिसने उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लिया।

आर्यिका अनन्तमती

भरत क्षेत्र के अंग देश में प्रियदत्त नाम के सेठ रहते थे। अंगवती उनकी पत्नी थी। उनके सुन्दर कन्या थी। जिसका नाम अनन्तमती था। वह सर्व गुणों की खान थी। जब वह 8-9 वर्ष की थी, अष्टान्हिका पर्व में सेठ प्रियदत्त अपनी रानी और पुत्री के साथ जिन मंदिर गए। भगवान के दर्शन करके मुनिराज के पास जाकर आठ दिन के लिए पत्नी के साथ ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। पुत्री ने व्रत लेना चाहा तो पिता ने उसे भी व्रत दिला दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब वह विवाह योग्य हुई तब पिता ने उसके विवाह की चर्चा की तब अनन्तमती ने कहा मैंने तो आपसे आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। पिता ने कहा वह तो विनोद में दिलाया गया था और फिर आठ दिन की बात थी पर अनंतमती अपनी बात पर दृढ़ रही और उनकी दृढ़ता देखकर माता-पिता ने विवाह की बात खत्म कर दी।

एक दिन अनंतमती अपने बगीचे में झूला झूल रही थी उसी समय एक विद्याधर उसे हरण कर ले गया। पुनः अपनी पत्नी के डर से उसे वन में छोड़ दिया। वन में एक भीलों का राजा आया और अनंतमती को अपनी पत्नी बनाना चाहा लेकिन कन्या की दृढ़ता के प्रभाव से वन देवी ने उसकी रक्षा की। भील ने अनंतमती को पुष्पक नामक सेठ को सौंप दी सेठ ने उसे अपने अधीन करना चाहा पर उसकी दृढ़ता से डर गया। सेठ ने अनंतमती को वेश्या के पास सौंप दिया कामसेना वेश्या ने उसे वेश्या बनाना चाहा परन्तु असफल रही तब उसने अनंतमती को सिंहराज राजा को सौंप दिया। राजा ने उसके साथ बलात्कार करना चाहा तब वन देवी ने उसकी रक्षा की। राजा ने उसे जंगल में छुड़वा दिया।

वन में आगे बढ़ते-बढ़ते वह अयोध्या पहुंच गई। वहाँ पद्मश्री आर्यिका के दर्शन किये और अपना सारा हाल उन्हें सुना दिया। आर्यिका ने अनंतमती को अपने पास रखा, सान्त्वना दी और संसार की स्थिति का उपदेश देते हुए उसके वैराग्य को और दृढ़ कर दिया। संयोग से अनंतमती को अपने पिता मिले। पिता ने पुत्री को घर चलने को कहा किंतु अनंतमती ने मना कर दिया और आर्यिका पद्मश्री से दीक्षा ले ली।'' महीने-महीने का उपवास कर कठिन तप कर सल्लेखना विधि से मरणकर बारहवें स्वर्ग में देव हो गई।''

गणिनी आर्यिका चन्दना

चंदना महाराजा चेटक और महरानी सुप्रभा की सबसे छोटी पुत्री थी। चन्दना युवावस्था को प्राप्त हुई। तभी एक दिन अपने बगीचे में क्रीड़ा कर रही थी। अकस्मात् विजयार्ध पर्वत एक मनोवेग नाम का विद्याधर राजा अपनी रानी के साथ आकाशमार्ग से जाता हुआ उधर से निकला। उसने चन्दना को देखा अपनी रानी को घर भेजकर उसने चंदना का अपहरण कर लिया। उसी समय मनोवेगा रानी ने राजा के मनोभाव को जानकर उसका पीछा किया और तर्जना की। उस मनोवेग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्याधर ने रानी से डरकर उस कन्या को पर्णलघ्वी विद्या के बल से विमान से नीचे गिरा दिया। कन्या चंदना भूतरमण वन में ऐरावती नदी के किनारे गिर गई। पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए चंदना ने वन में रात्रि बड़े कष्ट से बिताई। प्रातःकाल वहाँ एक कालक नाम का भील आया। चंदना ने उसे अपने बहुमूल्य आभूषण दे दिए और धर्मोपदेश भी दिया जिससे वह बहुत ही संतुष्ट हुआ। तब उस भील ने चंदना को ले जाकर अपने भीलों के राजा सिंह को देदी। सिंह भील कन्या से काम सम्बन्धी वार्तालाप करने लगा। चंदना की दृढ़ता को देख उस भील की माता ने उसे समझाकर चंदना की रक्षा की। उस भील ने चंदना को कौशाम्बी नगरी के मित्रवीर को सौंप दिया। इसने अपने स्वामी सेठ वृषभसेन के पास चंदना को लेजाकर दिया और बदले में बहुत सा धन ले आया। सेठ ने चन्दना को उत्तम कुलीन कन्या समझकर उसे अपनी पुत्री के समान रक्खा था। एक दिन चन्दना सेठ को जल पिला रही थी, उस समय उसके केशों का कलाप छूट गया था और जल से भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था । उसे वह यत्न से एक हाथ से सँभाल रही थी। सेठ की स्त्री भद्रा ने जब चंदना का वह रूप देखा तो शंका से भर गई। उसने मन में समझा कि मेरे पति का इसके साथ संपर्क है। ऐसा मानकर वह बहुत ही कुपित हुई। उस दुष्ट ने चन्दना को सांकल से बाँध दिया तथा उसे खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में काँजी से मिला हुआ कोदों का भात दिया करती थी। ताड़न मारण आदि के द्वारा वह उसे निरंतर कष्ट पहुँचाने लगी। परन्तु चन्दना निरन्तर आत्मनिंदा करती रहती। उसने यह सब समाचार वहीं कौशाम्बी की महारानी अपनी बड़ी बहन मृगावती को भी नहीं कहलाया।

एक दिन तीर्थंकर महावीर स्वामी मुनि अवस्था में वहाँ आहार के लिए आ गए। उसी समय चन्दना भगवान् के सामने जाने के लिए खड़ी हुई। तत्क्षण् ही उसके सांकल के बंधन टूट गये। उसके मुँडे हुए सिर पर बड़े-बड़े केश दिखने लगे और उसमें मालती पुष्प की मालायें लग गईं । उसके वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये। उसके शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा सुवर्ण पात्र बन गया और कोदों का भात, चावलों का भात बन गया। उस समय बुद्धिमती चंदना ने बहुत ही भक्तिभाव से भगवान का पड़गाहन किया और नवधाभक्ति करके विधिवत् भगवान् को खीर का आहार दिया। उसी समय देवगण आ गए, आकाश से पंचाश्चर्य वृष्टि होने लगी। जय जयकार की ध्वनि से सारा नगर गूंज उठा। कौशाम्बी की महारानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मृगावती भी वहाँ आ गई। अपनी बहन चंदना को पहचान कर उसे अपनी छाती से चिपका लिया स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेर कर सारा समाचार पूछा। चंदना ने भी अपहरण से लेकर आज तक का सब हाल सुना दिया। सुनकर मृगावती बहुत ही दुःखी हुई चंदना को अपने घर ले आईं।

यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों ही भय से घबराए और मृगावतीकी शरण में आ गए। दयालु रानी ने उन दोनों से चंदना के चरणकमलों में प्रणाम कराया और क्षमा याचना कराई। चंदना ने भी दोनों को क्षमा कर दिया। तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार से चंदना की प्रशंसा करते हुए चले गए। वैशाली में यह समाचार पहुँचते ही उसके वियोग से दुःखी माता-पिता, भाई-भावज आदि सभी लोग वहाँ आ गये और चंदना से मिलकर बहुत ही संतुष्ट हुए।

भगवान् महावीर को वैशाख सुदी 10 के दिन केवलज्ञान प्रगट हो गया। इन्द्र ने समवशरण की रचना की। किन्तु गणधर के अभाव में भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। श्रावण वदी एकम को 66 दिन बाद इन्द्र गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को वहाँ लाए। उन्होंने भगवान् के दर्शन से प्रभावित हो जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और भगवान् के प्रथम गणधर हो गए। चंदना ने भी तभी आकर भगवान् के पास आर्यिका दीक्षा ले ली। और सर्व आर्यिकाओं में गणिनी हो गई।

उस समय सभी आर्यिकाओं ने चंदना से ही दीक्षा ली थी। यहाँ तक कि उनकी बड़ी बहन चेलना ने भी उन्हीं चंदना से दीक्षा ली थी।

आर्यिका चेलना

चेलना का जन्म महाराज चेटक और महारानी सुप्रभा के यहाँ हुआ था। इनकी छः बहनें थीं। इनकी बड़ी बहन त्रिशला तीर्थंकर महावीर की मां थीं। इन्होंने बाल्यावस्था में जैनधर्म का मर्म अच्छी तरह समझ लिया था। विवाह राजगृही के राजा श्रेणिक के साथ हुआ। श्रेणिक बौद्ध धर्म को मानने वाले थे इसलिए दोनों ने अपने-अपने धर्म की प्रशंसा कर एक दूसरे को अपने धर्म में लाने का प्रयास किया।

एक बार राजा श्रेणिक जंगल में शिकार करने गए वहां ध्यानस्थ मुनि को देखा और पास पड़े हुए मृतक सर्प को मुनि के गले में डाल दिया और महल लौट आये। चार दिन बाद सारा वृतान्त रानी को सुनाया, रानी को दुःख हुआ, रानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी क्षण राजा श्रेणिक को लेकर मुनि के समीप पहुंची और उपसर्ग दूर किया। मुनिराज ने दोनों को समान आशीर्वाद दिया। यह देख श्रेणिक को जैनधर्म पर श्रद्धा हुई। एक बार भगवान महावीर का समवशरण राजगृही आया। राजा रानी दर्शनार्थ गए। ये वही राजा श्रेणिक थे जिन्होंने महावीर भगवान के समवशरण में साठ हजार प्रश्न किये थे। थोड़े ही दिनों के बाद रानी चेलना दीक्षा धारणकर समाधिमरण कर स्वर्ग को प्राप्त हुई।

आर्यिका मैनासुन्दरी

उज्जयिनी नाम की नगरी है। उसमें राजा पहुपाल शासन करते थे। उनकी रानी निपुणसुन्दरी के सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी दो कन्यायें थीं। बड़ी पुत्री शैवगुरू के पास पढ़ी तथा मैनासुंदरी ने आर्यिका के पास सभी विद्याओं और शास्त्रों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। एक दिन पिता ने कहा-बेटी ! तू अपनी इच्छा से अपने लिए वर का निर्णय बता दे। मैना ने इसपर मना कर दिया। और कहा मेरे भाग्य से जैसा होगा ठीक है। पिता ने भाग्य के नाम से चिढ़कर मैना का कोढ़ी के साथ विवाह कर दिया। यद्यपि रानी और मंत्रियों ने अत्यधिक मना किया था फिर भी राजा ने नहीं माना।

चम्पापुर के राजा अरिदमन की रानी कुंदप्रभा के एक पुत्र हुआ। जिसका नाम श्रीपाल था। पिता के दीक्षित होने के बाद ये राज्य संचालन कर रहे थे। अकस्मात् भयंकर कुष्ठ रोग से ग्रसित होने से प्रजा को उनकी बदबू सहन नहीं हुई तब श्रीपाल ने अपने चाचा वीरदमन को राज्य सम्भलाकर आप अपने 700 योद्धाओं के साथ देश से निकल कर वनों मे बिचरने लगे।

राजा पहुपाल ने इनके साथ ही पुत्री का विवाह कर दिया था। मैनासुन्दरी पतिव्रत आदि गुणों से युक्त पतिसेवा करने लगी। मैनासुन्दरी ने गुरू से व्रत लेकर प्रथम ही कार्तिक के महिने में व्रत किया। मंदिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का अभिषेक करके विधिवत् सिद्धचक्र पूजा की, गंधोदक लाकर अपने पति के सर्वांग में लगाया। साथ में रहने वाले 700 योद्धाओं के ऊपर भी छिड़का। केवल आठ ही दिनों मे श्रीपाल का कुष्ठरोग नष्ट हो गया और साथ ही 700 योद्धा भी रोगमुक्त हो गये। मैनासुन्दरी की जिनभक्ति के प्रभाव को देखकर सभी बहुत ही प्रभावित हुए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन विद्युत्पात देखकर राजा श्रीपाल को वैराग्य हो गया तब उसने अपने बड़े पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर महामुनि के पास दीक्षा धारण कर ली। उस समय उसके 700 योद्धा पुरुषों ने भी दीक्षा ले ली। माता कुंदप्रभा और मैनासुन्दरी ने भी दीक्षा ले ली। साथ ही 8000 रानियों ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। निर्दोष चर्या का पालन करते हुए मुनि श्रीपाल ने घोर तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

आर्यिका मैनासुन्दरी ने भी घोर तपश्चरण के द्वारा कर्मों को कृश कर दिया तथा सम्यत्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। आगे वह देव मनुष्य भव प्राप्त कर दीक्षा लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगी। मैनासुन्दरी की पतिसेवा और सिद्धचक्र आराधना की आज भी भारतवर्ष में सर्वत्र सराहना होती है।

आर्यिका विजया

सत्यंधर राजा राज्य करते थे। पट्टरानी का नाम विजया था। राजा सत्यंधर को विजया रानी के प्रति अत्यधिक स्नेह होने से उन्होंने अपने मंत्रियों के मना करने पर भी मंत्री काष्ठांगार को अपना राज्यभार सँभला दिया और आप महल में रहने लगे। एक बार रात्रि के पिछले भाग में रानी ने तीन स्वप्न देखे, उसने पति से कहा-हे आर्यपुत्र ! मैंने पहले स्वप्न में अशोक वृक्ष देखा है पुनः वज्र के गिरने से वह वृक्ष गिर गया। और उसी के निकट एक दूसरा अशोक वृक्ष निकल आया। राजा सत्यंधर ने स्वप्न का फल बताते हुए कहा उस वृक्ष और उसमें आठ मालाओं से तुम पुत्र को प्राप्त करोगी उसके आठ रानियां होगी। और प्रथम वृक्ष का पतन ने मेरे अमंगल को सूचित कर दिया। इतना सुनकर रानी शोक से मूर्छित हो गई। राजा ने अनेक प्रकार से समझाकर रानी को सान्त्वना दी। कुछ दिनों बाद रानी ने गर्भ धारण किया। राजा ने एक मयूर यंत्र बनवाया और रानी को उसमें बिठाकर मनोहर वनों में क्रीड़ा किया करते थे।

इसी मध्य काष्ठांगार ने राज्य को हड़पने के भाव से राजा पर चढ़ाई कर दी। तब राजा सत्यंधर ने जैसे-तैसे विजया रानी को समझाकर मयूरयंत्र में बिठाकर उड़ा दिया और आप युद्ध के लिए निकला। युद्ध करते हुए राजा ने अपना मरण देख वहीं पर परिग्रह का त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली जिससे स्वर्ग में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव हो गया। मयूर यंत्र ने रानी को नगर के निकट शमशान में गिरा दिया। रानी ने शमशान में ही पुत्ररत्न को जन्म दिया।

रानी पुत्र को गोद में लेकर विलाप कर रही थी कि उसी समय वहाँ एक देवी ने आकर रानी को सांत्वना देकर पुत्र को वहीं रखकर छिप जाने को कहा और समझाया - हे मात! एक वैश्यपति इसका पालन करेगा। उसी क्षण राजपुरी नगरी का ही सेठ गंधोत्कट अपने मृतक पुत्र को वहाँ छोड़कर निमित्तज्ञानी के कहे अनुसार वहाँ पुत्र को खोज रहा था। उसने इसे उठा लिया। उधर रानी ने ''जीव'' ऐसा आशीर्वाद दिया। गंधोत्कट ने घर लाकर जीवन्धर ऐसा नामकरण कर दिया। पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। कुछ दिन बाद गंधोत्कट की पत्नी सुनंदा ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नंदाढ्य नाम रक्खा गया। उधर वह देवी विजया को पास के तपोवन में ले गई, वहाँ वह अपने प्रच्छन्न वेष से रहने लगी। जब विजयारानी ने पुत्र को पिता के पद पर प्रतिष्ठित हुआ देख लिया तब वे बहुत ही सन्तुष्ट हुईं लालन-पालन करने वाले पिता गंधोत्कट और माता सुनन्दा भी यहीं जीवंधर के पास रहते थे। अब विजया को पूर्ण वैराग्य हो चुका था। उसने पुत्र जीवंधर कुमार से अनुमति लेकर जाकर सुनन्दा के साथ गणिनी आर्यिका के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों माताओं के दीक्षा ले लेने से राजा जीवंधर बहुत दुःखी हुए। वहाँ पहुँच कर दोनों आर्यिका माताओं को नमन किया। पुनः विषाद करने लगे। तब गणिनी आर्यिका ने इन्हें धर्मोपदेश दिया और समझाया। जिसमें कुछ सान्त्वना को प्राप्त होकर उन्होंने दोनों आर्यिकाओं के बार-बार चरणस्पर्श किये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

20वीं सदी के प्रथमाचार्य

चारित्र चक्रवर्ती

आचार्य श्री शान्तिसागरजी

उनकी

आचार्य परम्परा

एवं

इसी परम्परा में दीक्षित

प्रमुख पांच

आर्यिका रत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

।। गुरु वन्दना ।।

श्रीशान्तिसूरि–मुनिधर्म प्रकाशकाय,
श्रीवीरसिन्धु – शुभधर्मसमर्थकाय।
स्याद्वादसूरि – शिवसागरधर्मनेत्रे,
त्रैलोक्यवन्द्य – गुरुवर्य नमोस्तु तुभ्यम् ।। 1 ।।

श्री वीरशासन – विभासन – बद्धकक्षं,
शीतांशु–शुभ्र–यशसा धवलीकृताशम्।
कल्याणवल्लिजलदं वरधर्मसिन्धुं,
सूरि–प्रसिद्ध–गुरुवर्य नमोस्तु तुभ्यम् ।।2।।

रत्नत्रयं परिदधाति दिगम्बरः सन्,
श्रीशान्तिसागर–सुवंशलतां प्रसिच्चन्।
यः स्वात्म चिन्तनरतो विनतो विनेयैः,
भक्त्या नमाम्यजितसागर–सूरिवर्यम्।।3।।

काले कलौ विषमभोग–गतस्पृहः सन्,
श्रीजैन शासन प्रभावनतत्परो यः।
सिद्धान्ततर्कनिपुणो महितो मनोज्ञः,
भक्त्या नमामि तमहं गणिवर्धमानम् ।।4।।

साधुं नमामि दुरितं ननु संहरामि,
साधुं स्मरामि सुगतिं परिवर्धयामि।
साधुं महामि भवतामधिकं जहामि,
साधुं धरामि हृदये शिवतां च यामि।।5।।

– आर्यिका विशुद्धमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

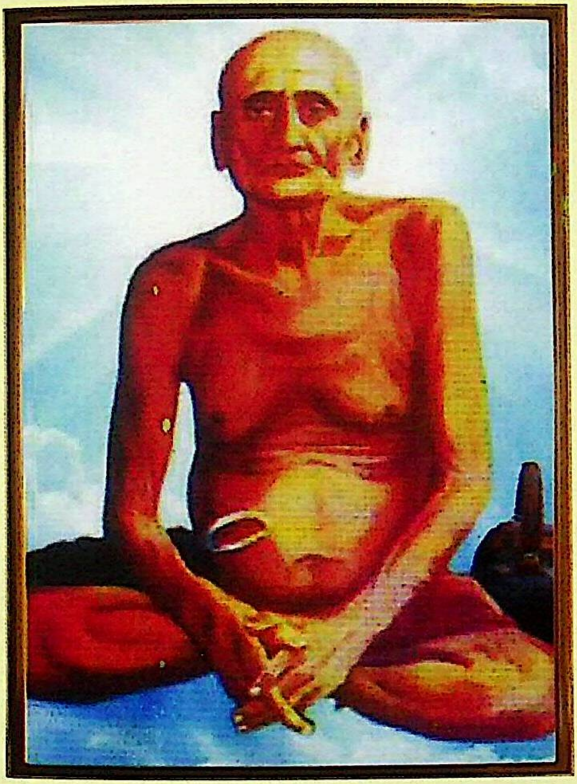

20वीं सदी के प्रथमाचार्य
परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती
प्रातः स्मरणीय 108 श्री शान्तिसागर जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

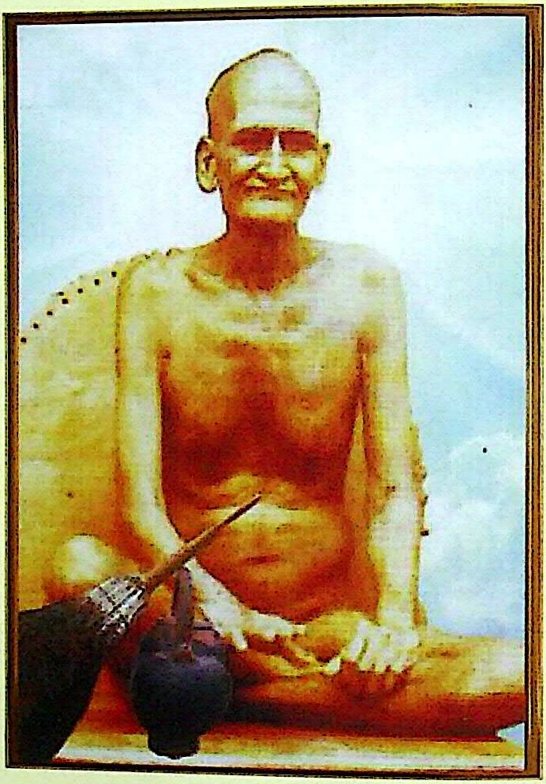

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी के प्रथम पट्टाचार्य
परम पूज्य चारित्र चूड़ामणि
आचार्य श्री वीरसागर जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

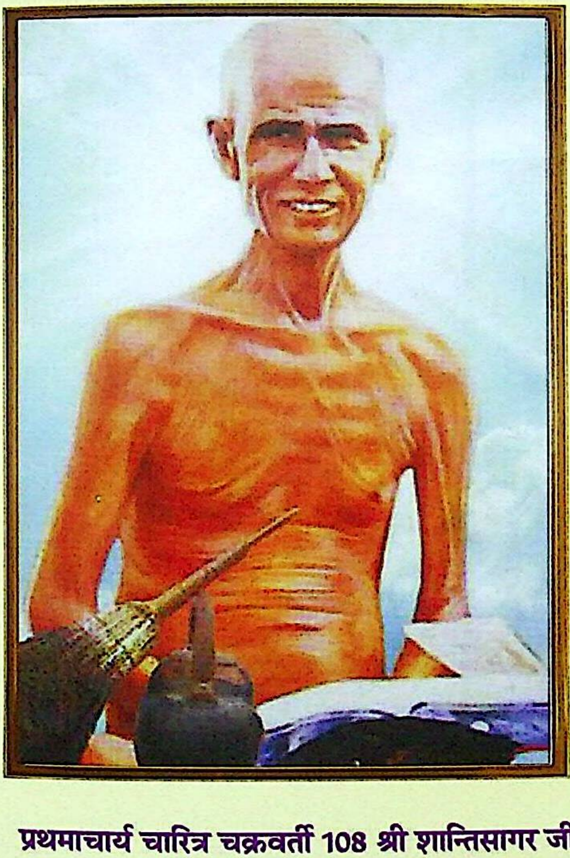

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती 108 श्री शान्तिसागर जी
की परम्परा के द्वितीय पट्टाचार्य
आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

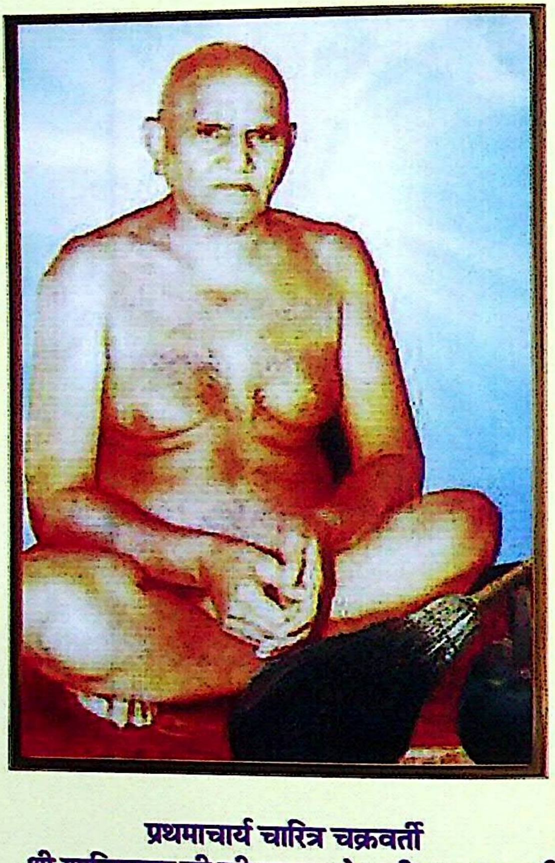

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती
श्री शान्तिसागर जी की परम्परा के तृतीय पट्टाचार्य
आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

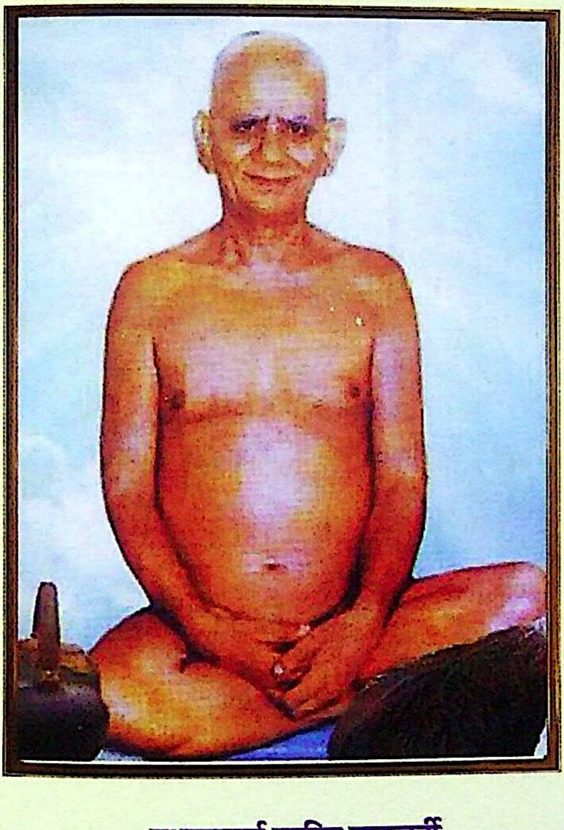

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती
108 श्री शान्तिसागरजी की परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य
आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

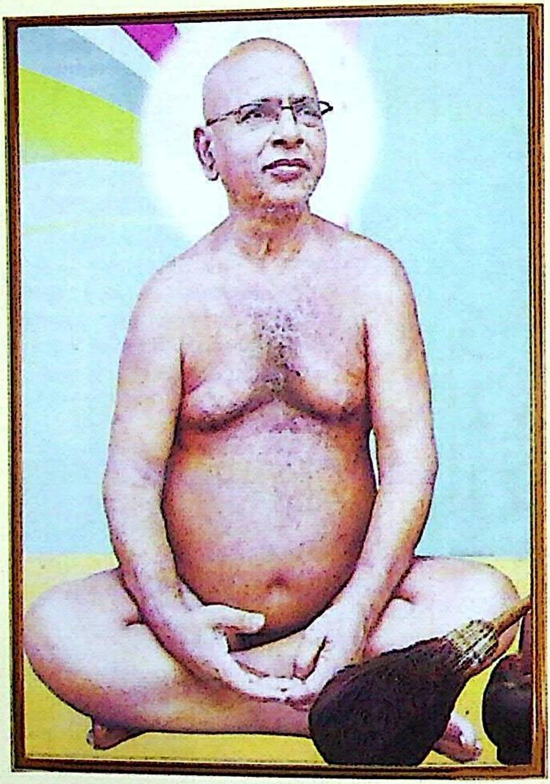

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती
108 श्री शान्तिसागरजी की परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य
वात्सल्य वारिधि, जिनधर्म प्रभावक, राष्ट्र गौरव
आचार्य 108 श्री वर्धमानसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य परम्परा

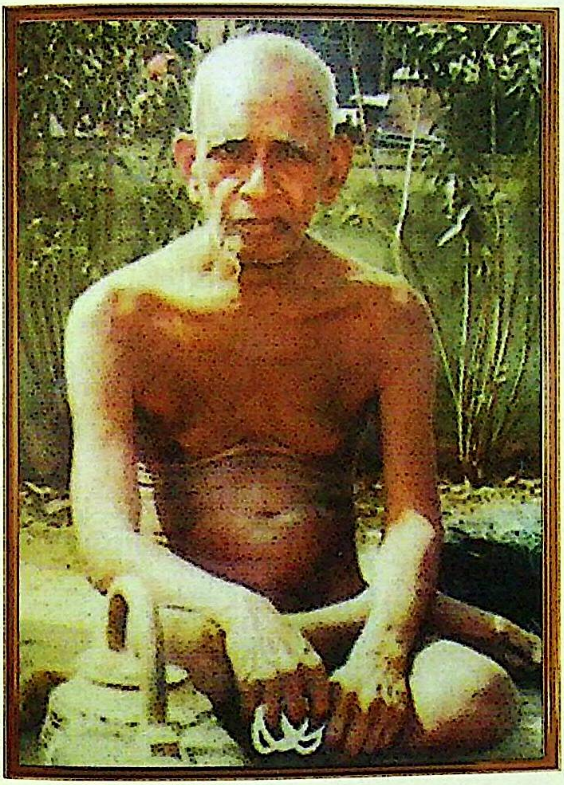

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती
108 श्री शान्तिसागरजी महाराज के शिष्य
आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका रत्न

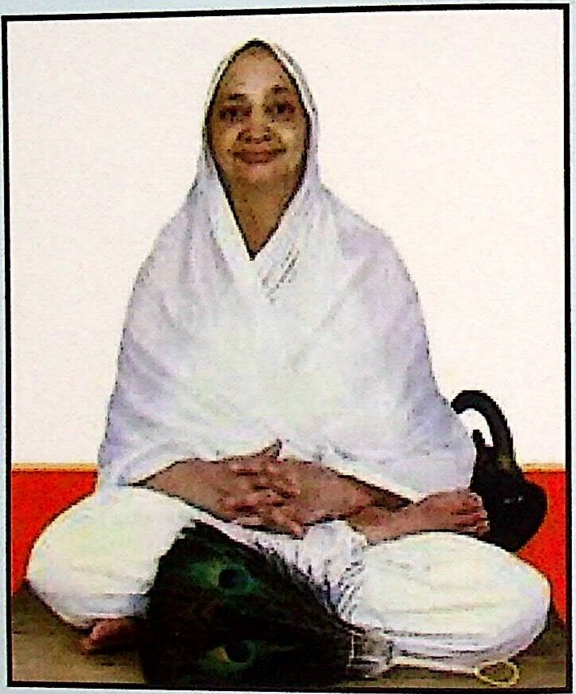

पूज्य गणिनी प्रमुख 105 आर्यिका
श्री ज्ञानमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका रत्न

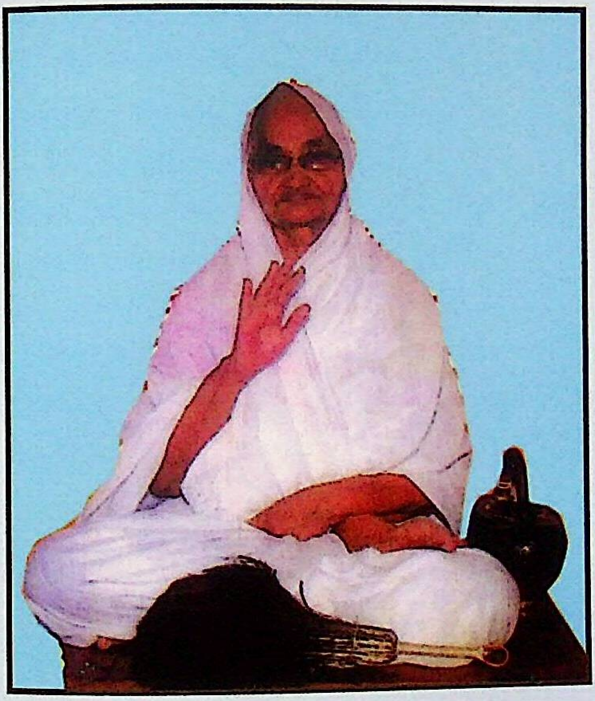

पूज्य गणिनी
श्री सुपार्श्वमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका रत्न

पूज्य आर्यिका
श्री जिनमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका रत्न

पूज्य आर्यिका
श्री आदिमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका रत्न

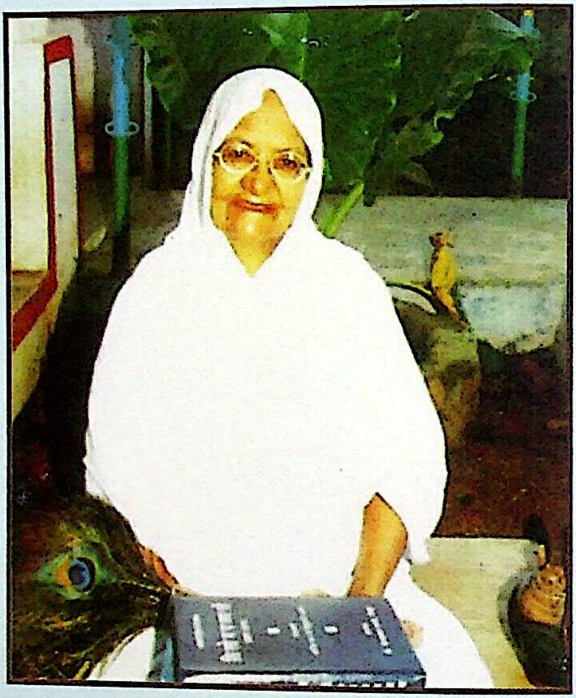

पूज्य आर्यिका
श्री विशुद्धमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांति सागर जी
द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चंदनं न वने वने ।।

हर पर्वत पर मणिक रत्न नहीं मिलते, हर हाथी के मस्तक में गज मोती नहीं होते, हर वन में चन्दन के वृक्ष नहीं होते, उसी प्रकार सभी जगह साधु नहीं होते। हमारा भारत देश सदा से साधु सन्तों की चरण रज से पवित्र एवं अध्यात्म और धर्म की धारा से ओत प्रोत रहा है। जैन श्रमण संस्कृति ने प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। बीच में कुछ समय ऐसा रहा जब देश में श्रमण परम्परा लुप्त-प्राय हो गई।

19वीं सदी में एक ऐसे महा पुरुष हमारे सामने आये, जिन्होंने रत्नत्रय धारण किया। जिनकी कठोर तपस्या आगमानुकूल चर्या और विद्वत्ता ने जन मानस को प्रभावित किया वे थे आचार्यश्री शांति सागरजी। इनके ही सत् प्रयासों से मुनि परम्परा पुनः जीवित हुई और हमें देश के हर प्रान्त में मुनि एवं आर्यिकाओं के दर्शन एवं उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त हो रहा है। प्रातः स्मरणीय परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शांतिसागर महाराज का नाम वर्तमान श्रमण परम्परा में सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा।

आर्यिका चन्द्रमती माताजी

कहा जाता है कि अतीत की पुण्य सम्पदा और वर्तमान का पुरुषार्थ दीक्षा में कारण बनता है ऐसे ही कुछ भाग्यशाली पुरुषों को आचार्य श्री ने दीक्षा दी एवं सर्वप्रथम नारीरत्न केशरबाईजी को आर्यिका दीक्षा दी। भाग्यशाली होते हैं वे लोग जो गुरु का गुणानुवाद करते हुए उनके चरण सान्निध्य की लालसा रखते हैं, उनसे भी कहीं ज्यादा सौभाग्य उनका होता है जिन्हे स्वयं गुरू याद करते हैं और मार्ग पर लगने की प्रेरणा देते हैं उन्हीं में से एक थीं श्री केशरबाई जी जिन्हें आचार्य श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांतिसागर जी ने यह कर दीक्षा दी कि '' नमूना तो बनो''। महाराष्ट्र प्रान्त के पूना मंडलान्तर्गत 'वाल्हे गाँव' में केशरबाई का जन्म हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया। सुगठित शरीर होने से आपका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। जो भी आपके गंभीर व्यक्तित्व को देखता वह प्रभावित हुये बिना न रहता था।

इन्होंने प्रारम्भ में बम्बई के श्राविकाश्रम में शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। श्राविकाश्रम की संचालिका महिलारत्न मगनबाई और उनकी सहायिका कंकूबाई और ललिताबाई थीं। इनके पिता ने घर पर ही पं. नाना जी से शिक्षित कराया। महाराज श्री ने अनेक महिलाओं को अनेकशः प्रार्थना करने पर भी दीक्षा नहीं दी थी। ये वर्तमान की प्रथम आर्यिका दीक्षित हुई थीं। इनके पूर्व उत्तर भारत में आर्यिका पद पर कोई भी विद्यमान नहीं था। इन्होंने वर्षों से विच्छिन्न श्रमणमार्ग को उत्तर भारत में प्रतिष्ठापित किया।

माताजी बहुत प्रसन्नचित होकर व्रत उपवास करती थीं। इनकी चर्या को देख कर समाज बहुत प्रभावित होती थी। सरल स्वभावी और मृदुवाणी की धनी माताजी का ध्येय निर्दोष चर्या पालन का रहता था। दिल्ली के सुप्रसिद्ध नये मन्दिर जी में शुभ्रवर्णी सहस्त्रकूट चैत्यालय एवं दिगम्बर जैन लालमन्दिर जी के उद्यान में सुन्दर मानस्तम्भ इनकी और इनके साथ रहने वाली आर्यिका विद्यामती माताजी की प्रेरणा के प्रतिफल हैं। अत्यन्त पवित्र हृदय वाली आत्मकल्याण में सतत् सावधान रहने वाली माताजी, 101 वर्ष की आयु तक व्रत नियम और चर्या का पालन करती रहीं। माताजी की महिलाश्रम, दरियागंज, दिल्ली में समाधि हुई थी।

आर्यिका विद्यामती माताजी

सज्जो देवी का जन्म सिकन्दरपुर (मुजफ्फरनगर) यू.पी. में श्रेष्ठी श्री फूलचन्दजी के घर हुआ। लौकिक शिक्षा के साथ व्याकरण, न्याय, सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा भी पास की थी। आचार्य श्री शान्तिसागरजी के उपदेश से वैराग्य हुआ संवत 1990 में सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किये, संवत 1998 में आचार्य श्री शान्तिसागरजी से दहीगांव में क्षुल्लिका दीक्षा ली एवं संवत 2008 दहीगांव में आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा ली। आपने 40 चातुर्मास यत्र तत्र कर धर्म प्रभावना की। आपने सोलह कारण, कर्मदहन, दशलक्षण धर्म आदि के व्रत लेकर उपवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किए। इस प्रकार तपस्वी साध्वी के रूप में आपने समाज के सामने त्याग की उत्कृष्टता सिद्ध की। .

क्षुल्लिका गुणमती माताजी

संसार में दुख का कारण इष्ट वियोग जन्य दुःख भी बनता है। परमपूज्य श्री 105 क्षुल्लिका गुणमति माताजी दिव्य देदीप्यमान नारी रत्न थीं जिन्होंने अपने जीवन में संचित ज्ञानराशि को दूसरों के हित के लिए अर्पित कर दी और अपना सारा जीवन संयम की आराधना में लगा दिया।

लाला हुकमचन्दजी के घर संवत 1956 में आपका जन्म हुआ। नाम रखा गया चावलीबाई । बाद में उसकी विशेष ज्ञान वृद्धि को देखते हुए ज्ञानवती नाम पड़ा। विवाह के 36 दिन के बाद ही आपको वैधव्य का सामना करना पड़ा । कुछ समय बाद बाबा भागीरथजी जैसे संतों का चरण सान्निध्य मिलने से अध्यन की रुचि जगी। सौभाग्य से विदुषी रत्न, लोकसेवी, शिक्षा प्रचारिका श्री रामदेवी जी के सम्पर्क से जैनधर्म के अध्ययन में निष्णात होने लगीं। सिद्धान्तशास्त्री पं. गौरीलालजी से शाकटायन व्याकरण का अध्ययन किया। असमर्थ विधवा सहायता योग्य बहिनों की उन्नति कैसे हो इस बलवती भावना के फलस्वरूप गुहाना में श्री ज्ञानवती जैन वनिताश्रम की स्थापना की गई। नारी हृदय की करुणाद्र भावना से ज्ञानवति जी ने इसका महत्व समझा । दिन रात संस्था की उन्नति में अहर्निश दत्तचित हो संस्था के विकास के मार्ग पर अग्रसर होती गईं। अंतस में वैराग्य की भावना से चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के संघ के साधुओं को आहार देना वैयावृत्ति करना, जहां संघ का विहार हो वहां जाना इनके जीवन का नियम हो गया । आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण की। अपने व्रतों को पालन करती हुई, सर्वत्र ज्ञान का प्रचार करती हुई दरियागंज में कन्याओं के धार्मिक शिक्षा प्रचार के लिए श्री ज्ञानवती कन्या पाठशाला की स्थापना करायी । माताजी ने स्त्री शिक्षा के प्रचार के साथ अपनी तपस्या और चारित्र में निर्मलता से भारतीय संस्कृति को अलंकृत किया ।

क्षुल्लिका अजितमती माताजी

कोल्हापुर जिले के बलीबढं ग्राम में श्री नाना साहिब चौगुले एवं श्रीमती कृष्णा बाई के घर एक कन्या का जन्म हुआ, नाम रखा गया मरुदेवी । ढाई वर्ष की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उम्र में मां ने विवाह कर दिया । 12 वर्ष की आयु में पति वियोग । 20 वर्ष की आयु में आ. शांतिसागरजी से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किये। सन् 1928 में पूज्य आचार्य शांतिसागरजी महाराज से तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में क्षुल्लिका दीक्षा धारण की, उसी समय से आपने अपने जीवन को तप-त्याग के मार्ग में लगाया । आपने अपने जीवन में अनेकों उपवास किये, जिनमें मुख्यतः सोलह कारण के, दो बार सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत किये। सांगली में आपने 1234 उपवास किये। क्षुल्लिका अजितमतिजी चारित्र चक्रवर्ति आचार्य शांतिसागर जी महाराज की अंतिम शिष्या थी आप वयोवृद्ध, तपोवृद्ध विविध गुण सम्पन्न थीं। आगमानुकूल चारित्र, सहनशीलता एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण जैन समाज में उत्कृष्ट चर्या के लिए प्रसिद्ध थीं।

पैरो में जलन की पीड़ा होने के कारण पैदल बिहार संभव नही था, इसलिए उनके दीक्षा गुरू ने उन्हें क्षुल्लिका अवस्था में श्रावकों के निजी वाहनों में बैठने की इजाजत दी थी। 90 वर्ष की उम्र में क्षुल्लिका अजितमति जी ने वाहन का त्याग कर आचार्य बाहुबली महाराज से बारामती में माघ कृष्णा सप्तमी 6 जनवरी 1991 में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । दूध, छाछ, नारियल जल और केवल जल इस क्रम से त्याग करते हुए निरन्तर धर्मध्यान में लीन रहीं वैशाख माह की गर्मी में अंत में जल का त्याग करके छै दिन बाद समाधि पूर्ण हुईं, आप बीसवीं सदीं के प्रथमाचार्य आचार्य शांतिसागर महाराज से दीक्षित शिष्यों की परम्परा में अंतिम कड़ी थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

आचार्य श्री शान्ति सागरजी के दर्शनों से प्रभावित होकर व्रत आदि ग्रहण करके संघ में रहने लगे। उन्हीं आचार्य से मुनि दीक्षा लेकर कठोर साधना की और उच्चकोटि के साधक के रूप में विख्यात हुए। आचार्य शान्ति सागरजी ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया। आचार्य वीर सागरजी के कर कमलों से अनेक पुण्यशाली जीव दीक्षा लेकर मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़े और अपनी साधना से जैन संस्कृति की सेवा प्रभावना की।

वीरमती माताजी

जाकि रहे भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी की भावना से माता जी के अंतस में धर्म भावना जगी । आपका गृहस्थ अवस्था का नाम चाँदबाई था जयपुर के श्री जमनालाल जी एवं गुलाब बाई के यहाँ जन्म हुआ। चांदबाई का लौकिक व धार्मिक शिक्षण सामान्य था । आचार्य श्री 108 शान्तिसागरजी के आगमन से भावों में विशुद्धि हुई अतः सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र में क्षुल्लिका की दीक्षा ली। आचार्य वीरसागरजी से आर्यिका दीक्षा ली। आपको सस्कृत व हिन्दी पर विशेष आधिकार प्राप्त था। आपने खातेगांव, उज्जैन, झालरापाटन, जयपुर, ईसरी, कोटा, उदयपुर आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने दूध के अलावा अन्य समस्त रसों का त्याग किया था। पांच रसों की त्यागी माता जीने खूब धर्म प्रभावना करी।

इन्हें आचार्य वीरसागर जी की प्रथम शिष्या होने का गौरव प्राप्त था। प्रायः इनका आहार नीरस ही होता था। विदुषी आर्यिका वीरमती माताजी का अधिकांश समय, स्वाध्याय और अध्ययन में ही बीतता था। माताजी को भी आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का चरण सान्निध्य मिला और इस परम्परा के तीन आचार्यों के साथ संघ में रहने का गौरव प्राप्त था।

आर्यिका इन्दुमती माताजी

धार्मिक संस्कार और धार्मिक आचरण ही हमें त्याग मार्ग पर ले जाता है। त्याग की प्रतिमूर्ति निर्भीक धर्म संरक्षिका आर्यिका 105 श्री इन्दुमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का जीवन सम्पूर्ण नारी जाति के लिए अनुकरणीय है। आपने देश के सभी प्रान्तों में विहार करके जैनधर्म की महती प्रभावना की। आपकी मधुर वाणी में होने वाले प्रवचनों में हमेशा आगम सम्मत सिद्धांतों का प्रतिपादन बड़ी निर्भीकता से होता था। मारवाड़ के डेह ग्राम में सन् 1905 में पिता चन्दनमल जी माता जडावबाई ने कन्या को जन्म दिया और नाम रखा मोहिनी। विवाह के छः माह बाद ही मोहिनी देवी को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा। पिता की प्रेरणा पाकर मोहनीबाई जिनेन्द्र पूजन व स्वाध्याय में काफी समय बिताने लगी। आपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा की। जब 108 मुनिश्री शान्तिसागरजी का संघ सम्मेदशिखरजी की वन्दना के लिए आया तो उनके दर्शनों से आपके विचार और भी अधिक वैराग्य की ओर बढ़े। आप मुनिश्री के प्रवचन अपने आवश्यक काम छोड़कर भी सुनती थीं। मुनिश्री 108 चन्द्रसागरजी सुजानगढ़ आये। जब मोहनीबाई को उक्त मुनिश्री के आने और चातुर्मास की बात ज्ञात हुई तो मोहनीबाई भी अपनी माता के साथ दर्शन करने के लिए आई और मां के साथ ही स्वयं भी दूसरी प्रतिमा स्वीकार करली। चातुर्मास के बाद मुनिश्री ने बिहार किया तब मोहनीबाई भी उनके साथ अनेकों नगरों में गयीं। वे आहार दान तथा धर्म श्रवण के कार्य करती थीं।

सन् 1926 में आपने सातवीं प्रतिमा स्वीकार कर ली। चन्द्रसागरजी ने कसाबखेड़ा (महाराष्ट्र) में चातुर्मास किया तब मोहनीबाई और मथुराबाई ने सन् 1942 में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। ब्रम्हाचारिणी मथुराबाई का नाम विमलमती रखा गया और ब्रम्हचारिणी मोहनीबाई को इन्दुमतीजी नाम दिया गया। जब नागौर में मुनिराज आचार्य श्री वीरसागरजी का चातुर्मास हुआ तब आपने उनसे आर्यिका दीक्षा ली और अपनी साध पूरी की। उनके संघ में रहकर आपने अनेक तीर्थों की यात्रा की। आपने भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में विहार कर धर्म प्रभावना की 105 आर्यिका रत्न श्री सुपार्श्वमति जी शिष्यावत आपके साथ रहीं उनका नाम जैन जगत में सर्वोपरि लिया जाता है अतुल साहस की धनी आर्यिका इन्दुमति जी में सिंहवृत्ति कूट कूट कर भरी थी वे कभी भी सिद्धान्तों से समझौता नहीं करती थीं। उम्र तथा स्वास्थ्य के कारण जब पैरों की शक्ति कमजोर पड़ने लगी तो किसी का अवलम्बन न लेकर तीर्थराज पर ही शेष संयमित जीवन को सल्लेखना पूर्वक पूर्ण करना ही श्रेयस्कर समझा। अपनी सहयोगिनी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी से परामर्श लिया। आर्यिका सुपार्श्वमती ने गुरुमाता की आंतरिक भावना को ग्रहण करते हुए उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधि साधना की निर्विकल्पता पूर्वक संपन्नता के लिए तीर्थराज को ही उपयुक्त माना क्योंकि सिद्धक्षेत्र में मरण तथा उत्तम पात्र को दान निकट भव्य ही कर सकता है, अन्य नहीं। आर्यिका श्री के ऐसे भावों से गुरूमाता का हृदय गदगद् हो गया। उन्होंने अपने आपको धन्य माना जिन्हें ऐसी सुयोग्य, त्वरित बुद्धि की क्षमता वाली, गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित शिष्या का संयोग मिला।

इन्दुमती माता जी ने काया को कृश करने की प्रक्रिया को गति प्रदान की। शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना धारण की। सल्लेखना की धारणा में निर्यापकाचार्य की आवश्यकता होती है जो साधक को संबोधन देते हुए व्रतों में स्थिरता के लिए प्रेरित करता रहे और साधक भी जिसके समक्ष अपने जीवन में किए हुए जाने-अनजाने पापों को, दोषों को निश्चल भावों से व्यक्त कर, चित्त को निर्मलता की धारा में डुबा सके। लेकिन उस समय तीर्थराज पर कोई दिगम्बर साधु की उपस्थिति नहीं थी तब आर्यिकाश्री गुरुमाता को भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष ले गई और शास्त्रोक्त विधिपूर्वक निर्यापकाचार्य के समक्ष की जाने वाली क्रियाओं को कराके द्रव्य, क्षेत्र की सीमा में बाँध दिया। मृत्यु के छह दिन पूर्व ही उन्होंने जल का भी त्याग कर समाधि की उत्कृष्टता की प्रतीक यमसल्लेखना की घोषणा की। नारी जाति में यह संभवतः सर्वप्रथम साहसिक कार्य था। इसके पूर्व किसी आर्यिका या नारी ने यमसल्लेखना की धारणा नहीं की थी। इससे पूर्व आचार्य श्री शांतिसागरजी ने यमसल्लेखना धारण की थी और यह दूसरा प्रसंग गुरूमाता के साथ जुड़ा। अपूर्व समता का परिचय देने वाली गुरूमाता इंदुमतीजी ने साहस और धैर्य के साथ अपनी निष्ठा निर्भीकता एवं वैचारिक दृढ़ता से जनमानस में धार्मिक आचरण की अलख जगाई।

आर्यिका विमलमती माताजी

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण। इस भावना से माता जी ने आपने ज्ञानार्जन को ही अपना लक्ष्य बनाया। आपका जन्म रामचन्द्र जी के घर ग्राम मुंगावली (म.प्र.) में विक्रम संवत 1962 में हुआ। बारह वर्ष की आयु में वैधव्य का भारी दुख सहा। बाद में आपने विद्याध्यन बम्बई में किया, 19 वर्ष की आयु के बाद आप अध्यापिका के पद पर नागौर (राजस्थान) में श्रीमान् सेठ मोहनलालजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
मच्छी द्वारा कन्या पाठशाला में नियुक्त हुईं। संयोगवश पूज्य 108 श्री चन्द्रसागरजी मुनि-महाराज विहार करते हुए नागौर पहुंचे। उस समय पूज्य महाराज से आपने द्वितीय प्रतिमा के व्रत लिए। आठ वर्ष पाठशाला में पढ़ाने के बाद अध्यापिका पद से त्यागपत्र दे दिया और पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज के संघ में विहार करने लगीं, तत्पश्चात् संवत् 2000 के कार्तिक कृष्णा 5 के दिन क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। आपने पूज्य 108 श्री वीर सागरजी महाराज से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी संवत 2002 को आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। शारीरिक कमजोरी के कारण विक्रम संवत 2020 के बाद आप ने लम्बी दूरी का बिहार करने में असमर्थ रहने के कारण नागौर के आसपास व खास नागौर में ही ज्यादा चातुर्मास किये। आपका दैनिक समय प्रायः स्वाध्याय में ही बीतता था। आपका मुख्य दैनिक स्वाध्याय पाठ आदि निम्न प्रकार चलते थे।

तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्याणमन्दिर, एकीभाव, स्वरूपसंबोधन, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, पार्श्वनाथस्तोत्र, ऋषिमण्डल स्तोत्र, णमोकार मंत्र का माहात्म्य, महावीराष्टक स्तोत्र, मंगलाष्टकम् पंच भक्ति पाठ, प्रथमानुयोग व द्रव्यानुयोग का स्वाध्याय एवं प्रतिक्रमण आदि। आपके द्वारा अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ जिनके मुख्य नाम ये हैं। कल्याण पाठ संग्रह, नित्यनियम पूजा, भक्तामर कथा (हिन्दी अनुवाद), शांति विधान (हिन्दी अनुवाद), देववंदना, समाधि तन्त्र, इष्टोपदेश, स्वरूपसंबोधन, जिनसहस्र स्तवन, द्वादशअनुप्रेक्षा, , सूतक निर्णय व नवधाभक्ति आराधना कथाकोष (संस्कृत) आदि। आराधना कथाकोष तीनों भाग हिन्दी व संस्कृत में प्रकाशित हुए हैं।

आर्यिका पार्श्वमती माताजी

संसार शरीर और भोगों की वास्तविकता जान लेने से ही वैराग्य के भाव बनते है। ऐसा ही कुछ घटित हुआ गैंदाबाई के जीवन में । आपका जन्म विक्रम संवत् 1956 में जयपुर के पास खेड़ा ग्राम में हुआ। आपके पिता मोती लाल जी एवं माता जड़ाव बाई ने 8 वर्ष की उम्र में विवाह कर दिया। गेंदाबाई की धार्मिक शिक्षा, ससुराल में ही हुई। 24 वर्ष की उम्र में वैधव्य का दुख झेलना पड़ा आपको संसार की असारता का बोध हुआ और उदासीन वृत्ति से घर में रहकर व्रतों का पालन कठोरता से करने लगीं। विक्रम सम्वत् 1990 में चारित्र चक्रवर्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे जयपुर खानियां में 7 वीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर लिए। आपके परिणामों में निर्मलता आई ओर अन्तस में वैराग्य का उदय हुआ, फलतः विक्रम सम्वत् 1997 में आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज से सकनेर में क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण करली। इस अवस्था में आकर आपने कठोर व्रतों का अभ्यास किया और ज्ञान-चारित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि की जिससे आपकी आत्मा में प्रबल वैराग्य की ज्योति जगमगा उठी, फलतः रविवार आसोज शुक्ला पूर्णमासी विक्रम सम्वत् 2002 में आचार्य वीरसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार अपनी आत्मा को तप और साधना से उज्ज्वल करती हुई ज्ञान और चारित्र के माध्यम से मुक्ति मार्ग पर अग्रसर हुई।

आर्यिका कुन्थुमती माताजी

नारी पयार्य की भूमिका में उत्कृष्ट पद है अर्यिका। आपने आचार्य वीर सागरजी महाराज से संवत 2003 में आर्यिका दीक्षा ली। सुपार्श्वमती माताजी के सान्निध्य में आपने अपना अधिकांश समय सम्मेद शिखरजी में आत्म साधना करते हुए व्यतीत किया।

आर्यिका सुमतिमती माताजी

धर्मध्यान ही परम्परा से मोक्ष का कारण है। 105 सुमतिमती माताजी जयपुर की थीं। आपने आचार्य श्री वीरसागरजी से जयपुर में आर्यिका दीक्षा ली संघ का विहार मारवाड़, डेह, नागौर की ओर हुआ। आपका अधिकांश समय धर्माराधना पूर्वक धर्म प्रभावना करते हुए बीता।

आर्यिका सिद्धमती माताजी

दुख से बचने का एक मात्र उपाय त्याग ही है धन वैभव और भोगों की लालसा हमें दुख देती है। श्रीमान् लाला नन्दकिशोर जी के घर माता श्री कट्टोदेवी की कुक्षि से विक्रम सम्वत् 1950 के आसौज में आपका जन्म हुआ। आपका नाम दत्तोबाई था। बालपन की अवस्था में ही आपको वैधव्य का दुख झेलना पड़ा। इस घोर संकट के आ जाने से आपके पिता ने दिल्ली में एक विदुषी महिला को आपकी शिक्षा के लिये निश्चित किया और उन्हीं के द्वारा आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा हुई। बालक अनूपचन्द्र को गोद लेने के 2 वर्ष बाद ही आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का संघ दिल्ली आया हुआ था। उस समय आपने शूद्र स्पर्शित जल न पीने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का नियम ग्रहण कर लिया । तीन माह बाद ही हस्तिनापुर में पुनः आचार्य श्री से सातवीं प्रतिमा तक के व्रत अंगीकार कर लिए। 8 वर्ष के कठोर व्रताभ्यास के बाद सिद्धवर कूट में आपने आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से फाल्गुन सुदी पंचमी सम्वत् 2000 में क्षुल्लिका दीक्षा ली। तप संयम और साधना के साथ ज्ञान और चारित्र में वृद्धि हुई जिससे विक्रम सम्वत 2006 में आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से नागौर में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । प्रबल वैराग्य भावना एवं जीवमात्र के कल्याण की भावना के साथ अपनी आत्मा को परमात्मा पद पर ले जाने का प्रयास करती रहीं।

आर्यिका वासुमती माताजी

दीक्षा ही आत्मोत्कर्ष का मंगलाचरण है। आर्यिका वासुमति जी का अन्तस आचार्य शान्तिसागर जी के आगमन से विरागी हुआ । आपका बचपन का नाम लाडबाई था आपके पिता चन्दूलाल जी थे। लाड बाईका जन्म जयपुर राजस्थान में हुआ था। विक्रम संवत् 2011 में आचार्य श्री 108 वीरसागरजी से खानियाँ में आर्यिका दीक्षा ली। आपने खानियाँ, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, दिल्ली, कोटा, उदयपुर, लाडनूं इत्यादि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की । आपने तेल, दही, मीठा आदि त्याग कर रखा था। माता जी की त्यागवृत्ति से समाज अत्याधिक प्रभावित थी।

आर्यिका शान्तिमती माताजी

धन वैभव के संचय में सुख नहीं अहिंसा से सुख त्याग से शांति मिलती है। आर्यिका शान्तिमती जी सुपार्श्वमती जी से प्रभावित होकर कल्याण मार्ग पर लगीं। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम कुन्दन बाई था। आपका जन्म नसीराबाद राजस्थान में श्री रोडमल जी एवं बसन्तीबाई के यहाँ हुआ। 105 श्री आर्यिका सुपार्श्वमति जी की सत्प्रेरणा से प्रभावित होकर आत्मकल्याण हेतु जयपुर में क्षुल्लिका दीक्षा ली। बाद में नागौर में 108 आचार्य श्री वीरसागरजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपके चातुर्मास पदमपुरी, सुजानगढ़, नागौर, अजमेर आदि स्थानों पर हुए। आपका विशेष त्याग और संयम की साधना समाज में धर्म प्रभावना में कारण बनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणिनी प्रमुख ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य आर्यिका ज्ञानमति माता जी ऐसी धर्मगुरु हैं। जिनका व्यक्तित्व, तेजपूर्ण आभा युक्त मुखमंडल और उनके प्रवचनों से प्रवाहित ज्ञानगंगा ऐसा प्रतीत होता है, कि यह साक्षात् मोक्षमार्ग का ही उपदेश दे रहा हो। विषय वासनाओं से जलते इस संसार में पूर्णिमा की चांदनी तो शीतलता की औषधि है और उसका पाथेय बना शरदपूर्णिमा को झरने वाला अमृत ऐसी ही शरदपूर्णिमा जैसे विशेष दिन जन्म लिया, मैना ने जिन्होंने आगे चलकर कल्याण का मार्ग तो चुना ही साथ ही पूर्णिमा की चाँदनी की तरह अनेकों भव्यजीवों के जीवन में ज्ञान का प्रकाश कर अमृत तुल्य मोक्षमार्ग बताया । ऐसी तपस्विनी माता जी की बालिका मैना से धर्मध्यान,अध्ययन,भक्ति आराधना द्वारा क्षुल्लिका वीरमती तक और क्षुल्लिका वीरमती से पूज्य ज्ञानमती माता जी तक की यात्रा वंदनीय है। वे जीव बिरले ही होते हैं, जो संसार की धारा के विपरीत तैरकर किनारे पर खड़े दिखते हैं। यह बड़े साहस का कार्य है, धन्य हैं, ऐसे पुण्यशाली जीव जो स्व-हित का मार्ग प्रशस्त करते हुए अन्य को भी मोक्षमार्ग पर लगने की प्रेरणा देते हैं। पूज्य माता जी ऐसी विभूतियों में से हैं, जिन्होंने परिजनों का मोह छोड़कर दीक्षा धारण की और परिजनों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाकर त्यागी परिवार में शामिल कर लिया।

बाराबंकी जिले के टिकैतनगर में विक्रम संवत् 1991 (22 अक्टूबर सन् 1934) की आश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) को श्री छोटेलाल जी एवं मोहिनी देवी के घर में एक कन्या ने जन्म लिया उनका नाम रखा गया मैना। मां मोहनीदेवी ऐसी नारी रत्न थी जिन्हें उनके पिता ने ''पद्मनंदिपंचविशंतिका'' दहेज में दी थी। जिसका निरंतर स्वाध्याय करके मां ने अपनी पुत्री को जन्मघुटी में ही धार्मिक संस्कार दिये थे। मैना के हृदय में बचपन से ही धर्मग्रंथों के स्वाध्याय की लगन लगी, इन्होंने जिनेन्द्रभक्ति में ऐसा मन रमाया कि भक्ति का फल वैराग्य दृष्टिगोचर होने लगा सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से शरदपूर्णिमा के दिन ही सातवीं प्रतिमा ग्रहण की वे अपनी जन्मतिथि शरद पूर्णिमा को ही वैराग्य मार्ग की पथिक बनीं। 1953 में ही आचार्य श्री देशभूषण महाराज से महावीर जी में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की, वीरप्रभु का अतिशय क्षेत्र दीक्षा स्थल और माताजी का नाम रखा गया वीरमती। वीरमती माताजी के जीवन का स्वर्णिम काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था जब प्रथमाचार्य चरित्र चक्रवर्ती शांतिसागर जी महाराज की समाधि के अंतिम एक माह तक चरणवंदना एवं समाधि देखने का सौभाग्य मिला। माताजी ने आचार्य भगवन से आर्यिका दीक्षा के लिए निवेदन किया तब आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने उन्हें उत्तर की अम्मा संबोधन दिया और कहा कि मैंने दीक्षा देने का त्याग कर दिया है और उन्हें आशीर्वाद देते हुए मुनि श्री वीरसागर जी से दीक्षा लेने कहा। उपसर्ग विजेता आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की समाधि के बाद उसी चातुर्मास में 'म्हसवण' में माताजी ने ''जिनसहस्त्रनाम मंत्र '' की रचना की। जिनकी लेखनी से प्रथम रचना जिनेन्द्र भगवान के 1008 नामों से हुई वह लेखनी आज भी अनवरत चारों अनुयोगों के शास्त्रों की टीका एवं रचना में लगी है।

राजस्थान के माधोराजपुरा में विक्रम सवंत् 2013 सन् 1956 में वैशाख वदी दूज को आचार्य शांतिसागर महाराज की परंपरा में प्रथम पट्टाचार्य आचार्य वीरसागर महाराज से क्षुल्लिका वीरमती जी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और नाम रखा गया आर्यिका ज्ञानमती, आचार्य वीरसागर महाराज ने माताजी से कहा ज्ञानमती जी मैंने तुम्हारा जो नाम रखा है उसका सदैव ध्यान रखना। माताजी की उत्कृष्ट साधना एवं तपस्या से प्रभावित होकर उनके संपर्क में आने वाले श्रावक, श्राविकाएँ उनके समक्ष नतमस्तक होते हैं और हमेशा के लिए उनके भक्त हो जाते हैं, माताजी के गृहस्थावस्था के अधिकांश परिजन आज भी उनके त्यागी परिवार के सदस्य है माताजी की मां मोहनी देवी ने आचार्य धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर रत्नमति माताजी के रूप में साधनारत रहीं और 1985 में उनकी समाधि हो गई। माताजी की दो बहिनें मनोवती जी और माधुरी जी माता जी के साथ रहीं। मनोवती जी आर्यिका अभयमति माता जी हुईं, जिन्होंने आचार्य धर्मसागर जी से दीक्षा लेकर अपना संपूर्ण जीवन त्याग तपस्या की साधना में लगाया और छोटी बहिन माधुरी जी ने आर्यिका ज्ञानमती माताजी से दीक्षा ली और आज वे प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकाश्री चन्दनामती माताजी हैं, जो हमेशा छाया की तरह पूज्य ज्ञानमती माताजी की सेवा में संलग्न रहते हुए आत्मसाधना और साहित्य सृजन में रत हैं। माताजी के छोटे भाई श्री रवीन्द्र जी हैं। व्रतों के साथ-साथ धर्मतीर्थ एवं संस्कृति पोषण और समाजसेवा ग्रंथ प्रकाशन आदि कार्यों में लगे रहे वर्तमान में आप पीठाधीश श्रीरवीन्द्र कीर्ति जी के पद को सुशोभित कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चँहुमुखी प्रतिभा की धनी पूज्यगणिनी ज्ञानमती माताजी ने अपने जीवन में अनगिनत जीवों को प्रेरणा देकर संसार पंक से बाहर निकाला और शिवपथ का पथिक बनाया। इनमें से अधिकांश ने माताजी से धर्मग्रंथों का अध्ययन किया और उनकी प्रेरणा से गृहत्याग करके ब्रम्हचर्य व्रत लेकर कुछ समय बाद जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। आज वे मुनि आचार्य आर्यिका बनकर भारतीय संस्कृति में साहित्यक अवदान देकर उसे समृद्ध कर रहे हैं और स्व-पर कल्याण में रत है।

माता जी ने साहित्य सृजन के क्षेत्र में कठिन से कठिन और अत्यंत सरल विषयों को लेकर अपनी लेखनी चलाई आपके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या लगभग 250 से अधिक है जिनमें से अधिकांश ग्रंथ लाखों की संख्या में 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' और हस्तिनापुर में स्थापित 'वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला 'से प्रकाशित हो चुके हैं।

आपकी प्रेरणा से दिगंबर जैन त्रिलोक शोध संस्थान ने छोटे-बड़े प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शिविर-सेमिनारों के आयोजन भी सम्पन्न किए हैं। अपने सान्निध्य में होने वाले शिविर, सेमिनारों में पधारने वाले विद्वानों को पूज्य माताजी यही प्रेरणा प्रदान करती हैं। उनका कहना है कि विद्वान् लोग समाज के दिशा निर्देशक होते हैं, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम स्वयं में सदाचारी, अणुव्रती और निष्पक्ष वक्ता के रूप में जिनवाणी के चारों अनुयोगों के अनुसार वस्तु तत्व का व्याख्यान करना चाहिए। प्राचीन साहित्य एवं भगवान महावीर के सिद्धांतों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करने का शुभ संकल्प करके नारी जाति का सम्मान बढ़ाया। जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति रथ का प्रवर्तन 4 जून 1982 को भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपकी प्रेरणा से ही किया था।

सम्यग्ज्ञान पत्रिका – दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान जम्बूद्वीप हस्तिनापुर से प्रकाशित सम्यग्ज्ञान पत्रिका में जिनवाणी के चतुर अनुयोगों का समावेश सीधी सरल हिन्दी में करने का अनुठा प्रयास माताजी की प्रेरणा से निरंतर हो रहा है।

आगम के गूढ़ रहस्य और सामयिक प्रसंग पूज्य ज्ञानमती माताजी की लेखनी से हमें निरंतर प्राप्त हो रहा है। चारों अनुयोगों के अनेकों ग्रन्थों की संस्कृत हिन्दी टीकाएँ, भक्तिमार्ग में अनेकों स्त्रोत संस्कृत-हिन्दी-कन्नड़ भाषा में रचें हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाटक विधा में भी आपकी रचनाएं हैं, अनेकों छोटे-बड़े विधानों की रचना करके श्रावकों के लिए भक्तिमार्ग प्रशस्त किया है। न्याय-व्याकरण विषयक ग्रन्थों पर भी हिन्दी टीकाएं लिखीं इस प्रकार अपने नाम के अनुरूप् ज्ञानामृत की वर्षा कई माध्यमों से माता जी ने की है।

षट्खण्डागम (सिद्धांत चिंतामणि टीका समन्वितः) खण्ड 1 पुस्तक 1 से 16 तक में पूज्यमाताजी ने षट्खण्डागम की संस्कृत टीका की जैन ज्योतिर्लोक '' गोम्मटसार जीवकाण्ड '', गोम्मटसार कर्मकाण्ड '', भाव त्रिभंगी , जम्बूद्वीप , आसव त्रिभंगी आदि अनेक ग्रंथों को पूज्य माताजी ने सहज ज्ञानगम्य बनाकर हम सभी पर महान उपकार किया। जिनेन्द्र भक्ति के क्षेत्र में माताजी ने सभी तीर्थंकर भगवन्तों की पूजाएँ व अनेकानेक विधानों की रचना करके एक ऐसी अनूठी सौगात हमें दी है जिसके माध्यम से उनकी रचनाएं जगह-जगह हजारों लोगों के द्वारा एक स्वर में भावपूर्वक दोहराई जाती है। पूज्य माताजी द्वारा लिखे गए पूजन विधान में माताजी ने भक्ति, साहित्य, इतिहास और जिनागम को एक साथ संजोया है। आपकी लेखनी से सहस्त्रनाम विधान, जम्बूद्वीप पूजांजलि , तीस चौबीसी विधान, सम्मेदशिखर टोंक पूजन, ऋषिमंडल विधान, समवशरण विधान, तेरहद्वीप पूजन, त्रिभुवन तिलक पुण्यास्त्रव विधान, कर्मदहन विधान, इन्द्रध्वज विधान, समयसार विधान आदि अनेक विधानों एवं आचार्य भगवन्तों और तीर्थक्षेत्रों की पूजाएं लिखी।

पूज्य ज्ञानमति माताजी ने जैन न्याय के सर्वोच्च एवं कठिन ग्रंथ अष्टसहस्त्री का हिन्दी अनुवाद करके जैन न्याय के क्षेत्र में एक सफल एवं स्तुत्य कार्य किया। अलाप पद्धति, समाधि तंत्र , इष्टोपदेश, भाव संग्रह, नियमसार कलश, द्रव्यसंग्रह सार , समयसार का सार , आप्त मीमांशा, कातंत्ररूपमाला नामक संस्कृत व्याकरण ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद किया। अनेकानेक ग्रंथों का अन्वयार्थ और पद्यानुवाद करके पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी से सरस्वती भंडार को अत्यंत समृद्ध बनाया। तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र प्रथम कामदेव श्री बाहुबली भगवान की भक्ति करते हुए माताजी ने अपने अंतस के भावों को हिन्दी और कन्नड़ भाषा में प्रस्तुत किया। बाहुबली स्तोत्र कन्नड़ भाषा में - वी.नि.सं. 2491, सन् 1965, श्रवणबेलगोला तीर्थ पर चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने कन्नड़ भाषा में बाहुबली स्तोत्र लिखा। इसमें बाहुबली स्तोत्र, चन्द्रप्रभ स्तुति, णमोकार मंत्र का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महात्मय, बारह भावना सभी कन्नड़ में अनुवादित है। बाहुबली स्तुति - श्रवणबेलगोला तीर्थ पर पूज्य माताजी ने यह पुस्तक कन्नड़ में लिखी। इसमें बाहुबली स्तुति, भक्तामर स्तोत्र, जिनगुण सम्पत्ति व्रतकथा, बारहभावना, दशलक्षण, आकाशपंचमी, पुष्पांजलि, सुंगधदशमी, रत्नत्रय व्रत, णमोकार व्रत, लब्धि विधान व्रत आदि व्रतों की विधि और मंत्र , उद्यापन विधि है।

भगवान बाहुबली - भगवान बाहुबली सहस्त्राब्दि महामस्तकाभिषेक श्रवणबेलगोला के पावन प्रसंग पर भगवान बाहुबली की जीवन गाथा तथा 57 फुट ऊँची अति मनोज्ञ प्रतिमा का प्रत्यक्ष या परोक्ष दर्शन की महिमा है। इसमें 111 पद्यों में बाहुबली लावणी तथा गद्य में जीवन चरित्र दिया गया है। बाहुबली लावणी का सृजन वीर सं.2491, सन् 1965 में श्रवणबेलगोला में साक्षात् बाहुबली की प्रतिमा के समक्ष बैठकर माताजी ने किया था। वीर सं.2507, सन् 1981 में इसी लावणी को संगीतबद्ध करके 7 सप्ताह तक आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित किया गया था, जिसका शीर्षक था '' पाषाण बोलते हैं।'' बाहुबली नाटक, बाहुबली पूजा, योगचक्रश्वर बाहुबली, कामदेव बाहुबली नामक यह उपन्यास हिंदी अंग्रेजी , गुजराती कन्नड़ एवं मराठी भाशाओं में भी सन् 1981 में भगवान बाहुबली सहस्त्राब्दि महामस्तकाभिषेक महोत्सव श्रवणबेलगोला के अवसर पर प्रकाशित हुआ।

प्राचीन तीर्थों का विकास एवं नवीन जिनालयों के निर्माण के क्षेत्र में एवं तीर्थंकर भगवन्तों की जन्मभूमियों को विकसित करने में नया रूप देने का माताजी का कार्य स्तुत्य एवं वदंनीय है। तीर्थ निर्माण के क्षेत्र में भी आपका भरपूर योगदान है। हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना, प्रयाग में दीक्षास्थली तीर्थ का निर्माण, कुण्डलपुर (नालंदा) में भव्य तीर्थ का निर्माण, अयोध्या तीर्थ का विकास, मांगीतुंगी तीर्थ का विकास एवं वहाँ पर्वत पर भगवान ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा दी।

99 करोड़ महामुनियों की निर्वाण स्थली मांगीतुंगी सिद्ध क्षेत्र में पूज्य माताजी ने 1996 में तीर्थंकर ऋषभदेव की अद्वितीय जिन प्रतिमा की प्रेरणा दी सन् 2002 में विश्व की सबसे ऊँची अखंड पाषाण में निर्मित 108 फीट की भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ 11 फरवरी 2016 से 17 फरवरी 2017 तक अंतर्राष्ट्रीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामस्तकाभिषेक महोत्सव पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। आदिदेव का अभिषेक एक वर्ष तक चलता रहा। विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा 1008 भगवान श्री आदिनाथ जी की जो 108 फीट ऊँची है का नाम गिनीज बुक आफवर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज किया गया है।

पूज्य माता जी की प्रवचन शैली बहुत ही बिलक्षण एवं प्रभावक है जब वे अपने प्रवचन में कठिन से कठिन विषय को लेती है तो हमें सरलता से समझ में आता है। किसी क्षेत्र विशेष या जिन प्रतिमा का वर्णन करती है तो वह इतना मनोहारी होता है कि हम मानो साक्षात वहाँ के दर्शन करने पहुंच गए। आपकी प्रवचन शैली अत्यंत सहज सरल सरस एवं हृदयग्राही होती है, पूज्य माताजी की प्रमुख विशेषता कहें या उनकी वात्सल्य मयी मनमोहनी छवि जो अनायास ही सबको आकर्षित कर लेती है। जो दर्शन करने आते है माताजी भी उन्हें स्नेह से आशीर्वाद देकर उनकी बात सुनकर उन्हें भगवान की भक्ति से शांति का उपाय करने का सदुपदेश देती हैं। प्रभावक व्यतित्व की धनी और सत्कार्यों की प्रेरणा देने वाली माताजी को समाज ने समय - समय पर न्याय प्रभाकर, चारित्रचन्द्रिका, युगप्रवर्तिका, गणिनीप्रमुख, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी, तीर्थोद्धारिका इत्यादि कितनी ही उपाधियों से सम्मानित किया है। ऐसे वृहत व्यक्ति वाली पूज्य माताजी के चरणो में मेरा शत् -शत् नमन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

लौकिक जीवन के उत्थान में शिक्षा का जो महत्व है आध्यत्मिक उत्थान में त्याग का महत्व होता है। आत्म कल्याण के मार्ग में सत्यता और सरलता आवश्यक होती है। संसार की सत्यता को स्वीकार करके अपने आत्म कल्याण की भावना रखने वाले जीव महापुण्यशाली होते हैं जो जीवन में दीक्षा ग्रहण कर अपनी मानव पर्याय को सार्थक कर लेते हैं। गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ऐसे ही व्यक्तित्व की धनी थीं। जिन्होंने जीवन की वास्तविकता को समझ कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की।

राजस्थान के मैनसर गांव में श्री हरकचंद जी चूड़ीवाल के घर विक्रम संवत् 1985 फाल्गुन सुदी नवमी के दिन एक कन्या का जन्म हुआ उनका नाम रखा गया भँवरी। माता पिता ने बारह वर्ष की उम्र में ही नागौर में श्री छोगमल जी के पुत्र इंदरचंद जी के साथ भँवरी बाई का विवाह कर दिया। विवाह के तीन माह बाद ही भँवरी बाई को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा । संसार के लोक व्यवहार से अनभिज्ञ बालिका के मन में उथल-पुथल हुई । ऐसी दुविधा की स्थिति में यदि कोई सहारा समझ में आता है तो वह है भगवान की भक्ति। भक्ति में वह शक्ति होती है जो मन की दुर्बलता को दृढ़ता में परिवर्तित कर देती है। भँवरी बाई ने भी अपने मन की दुर्बलताओं को परे करके अपने पिता के घर में रहते हुए दैनिक धार्मिक क्रियाओं में मन लगाया। अपना अधिकांश समय स्तोत्र पाठ, पूजन, स्वाध्याय आदि में लगाया। विक्रम संवत् 2005 में पूज्य इन्दुमति माताजी का आगमन मैनसर में हुआ माताजी के व्यक्त्तिव से वह बहुत प्रभावित हुईं और अपना दुःख भूलकर वैराग्य की ओर अग्रसर हुईं।

एक दिन इन्दुमति माताजी का आहार भँवरी देवी जी के घर पर हुआ। आहार के बाद भँवरी देवी भोजन करने बैठीं चूंकि इंदुमती जी का नमक त्याग था अतः भँवरी अपने भोजन में नमक मिलाने उठी तो पिता हरकचंद जी बोले- ''क्या नमक के बिना नहीं चल सकता बहुत से मुनि-आर्यिकाएँ भी तो नमक नहीं खाते। ''आज अपने यहाँ आहार हुआ है हम सभी आज बिना नमक का ही भोजन करेंगे। बस भँवरी के मन में बात बैठ गई और उसी दिन से उन्होंने आजीवन नमक का त्याग कर दिया कहने को तो यह एक छोटी- सी घटना थी पर भँवरी जी की दृढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
इच्छाशक्ति को व्यक्त करती है। इन्दुमति माताजी के सान्निध्य से भँवरी देवी का आत्म विश्वास बढ़ा और माता जी से सातवीं प्रतिमा के व्रत लेकर उनके साथ ही रहनी लगीं। अब धीरे-धीरे उन्होंने संस्कृत भाषा का और धर्मशास्त्रों का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। आंरभ में संस्कृत का अध्ययन ब्रम्हचारी राजमल जी के पास किया जो बाद में आचार्य शांतिसारगर जी महाराज की परंपरा के चतुर्थ पट्टाचार्य 108 श्री अजित सागर जी महाराज बने।

फिर कुछ वर्षों बाद आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के पास भी आपको अध्ययन का अवसर मिला। विक्रम संवत 2014 भाद्रपद शुक्ला 6 के दिन विशाल जन समूह के मध्य आचार्य वीरसागरजी एवं आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघों की उपस्थिति में ब्रम्हचारिणी भँवरी बाई ने आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। भगवान् सुपार्श्वनाथ का गर्भकल्याणक दिवस होने से गुरूदेव ने आपको सुपार्श्वमती नाम दिया। आचार्य महावीरकीर्ति जी ने कहा था '' जैसे कुम्भ राशि वाले अगस्त्य ऋषि ने समुद्र का शोषण किया था, उसी प्रकार यह कुम्भ राशि वाली आर्यिका जैन शास्त्रों के समुद्र को मथकर अमृत निकालेगी और अपने संसार समुद्र का शोषण करेगी।'' सुपार्श्वमती माता जी को ब्रम्हचारिणी से सीधे आर्यिका दीक्षा मिली थी। आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी आचार्य श्रीवीरसागर जी से दीक्षित अंतिम शिष्या थीं।

आर्यिका श्री के तप त्याग की सीमा बढ़ती गई। आर्यिका दीक्षा के साथ ही चातुर्मास में एक उपवास एक पारणा का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहा। अष्टान्हिका में अन्न त्याग का भी माताजी का नियम था, संयमित जीवन काल में लगभग पाँच हजार से ज्यादा उपवास किए। पूर्व में दशलक्षण पर्व पर दस दिनों के उपवास का क्रम भी चला। नमक, मीठा का आजीवन त्याग, कभी-कभी तो रोटी या चावल मात्र पानी के साथ लेकर आहार चर्या पूर्ण की।

आपके प्रवचन आगमसम्मत और अकाट्य तर्कपूर्ण होते थे। समझाने के लिए अनेक व्यवहारिक उदाहरण भी आप देती चलतीं। प्रतिष्ठित विद्वान् भी अपनी शंकाओं का आपसे समीचीन समाधान पाकर संतुष्ट होते। आपकी सबसे बड़ी विषेशता तो यह थी कि कोई आपसे कितने ही प्रश्न करे , कितनी ही बार करे , आप बिना व्यग्र हुए बराबर उनका प्रामाणिक उत्तर देती और प्रश्नकर्ता को संतुष्ट करती थीं। आपके चेहरे पर खीज या क्रोध के चिह्न कभी दृष्टिगत नहीं होते । पूज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिकाश्री ने अपने संयमित जीवन में कृतियों का सृजन कर समाज को अमूल्य निधि सौंपी। धार्मिक नैतिक कथाओं, नारी के शील संयम से पूर्ण नारी का चातुर्य, दशलक्षण धर्म पर विवेचना, पौराणिक चारित्रों, कथानकों पर आधारित रचनाएँ, सूक्ति संग्रह तथा जैनागम के अनेक क्लिष्टतम ग्रंथों की हिंदी टीका करके सामान्यजन की समझ में आने वाली सहज सरल भाषा शैली में प्रस्तुति की।

अपने प्रवचनों में आर्यिकाश्री ने हमेशा चारित्र शुद्धि एवं संयम पर जोर दिया। सबको आर्शीवाद देने का क्रम भी चलता रहता था, और लेखनी अपना कार्य करती रहती थी। बुद्धि की विलक्षणता का तो कहना ही क्या। श्रद्धालुओं को लगता है कि माताजी हमारी बात नहीं सुनतीं बस लेखनीं में ही व्यस्त रहती हैं, हमारी तरफ देखती भी नहीं पर उनकी यह धारणा उस समय निर्मूल हो जाती है जब कोई श्रावक आर्यिकाश्री से कोई शंका या प्रश्न का समाधान चाहता था तब आर्यिकाश्री बिना कलम रोके उसके प्रश्न का उत्तर देकर उसे संतुष्ट कर देती थीं। माताजी की सरल प्रवृत्ति सौम्य आकृति और सहज वात्सल्य भाव, चर्या एवं अपनत्व से प्रभावित होकर लगभग 25 से 30 जोड़ों ने आपसे आजीवन ब्रम्हचर्य व्रत लिया। माताजी के साथ छाया की तरह सदा सेवा में रत रहने वाली बहिन प्रमिलाजी ने तो पूज्य माताजी के ब्रम्हचर्य पर होने वाला प्रवचन सुनकर ब्रम्हचर्य व्रत भर नहीं लिया बल्कि गृह त्याग करके उनके साथ ही रहने लगी थीं जो वर्तमान में आर्यिका गौरवमती माताजी हैं। गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ने कई पुण्यशाली नारियों को नारी पर्याय का उत्कृष्ट पद आर्यिका दीक्षा देकर उन्हें संयम साधना की ओर अग्रसर किया और माताजी का यह उपकार उनकी समाधि साधना तक अनवरत चलता रहा।

आर्यिका नेममती जी, आर्यिका निर्मलमती जी, आर्यिका भक्तिमती जी, आर्यिका दृढ़मती जी, आर्यिका अंतरमती जी, आर्यिका निश्चलमती जी, आर्यिका रोशनमती जी, आर्यिका सहजमती जी, आर्यिका गौरवमती माताजी आदि अनेक नारी रत्नों को दीक्षित किया। मोक्ष पथ के पथिकों की उत्कृष्ट भावना आत्मकल्याण की होती है पूज्य माता जी ने समाधि सल्लेखना अत्यंत वात्सल्य भाव से सहयोगी बनकर कराई। आर्यिका इन्दुमति माताजी की शिष्याओं में सुपार्श्वमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
माताजी का नाम सर्वोपरि है। अपनी गुरु माता इन्दुमति जी की सल्लेखना में सुपार्श्वमती माताजी ने अहम भूमिका निभाईं।

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ने अपने वात्सल्यभाव से लगभग 20 मोक्षमार्ग के पथिकों की समाधि सल्लेखना कराई। मैं अपना सौभाग्य मानती हूँ कि मैंने आर्यिका विशुद्धमती माताजी की समाधि के समय धरियावद(नंदनवन) में पूज्य सुपार्श्वमती माताजी का वात्सल्यभाव और सदा सजगता का अनुभव किया। आर्यिका विशुद्धमती माताजी की बारहवर्षीय सल्लेखना का अंतिमवर्ष का चातुर्मास 2001 में नंदनवन धरियावद में चल रहा था। निर्यापकाचार्य आचार्य वर्धमान सागर जी भी ससंघ विराजमान थे आचार्य भगवन्त स्वयं निर्देश देते और पूरा संघ माताजी महाराज जी सल्लेखना में सहयोगी थे। लेकिन विशुद्धमती माताजी के मन में बार-बार आता था कि संघ में सभी आर्यिकाएं मुझसे छोटी है पर्याय की भिन्नता की वजह से हर बात आचार्य श्री से नहीं कह सकते कोई वरिष्ठ माताजी होतीं तो अच्छा रहता।

सल्लेखना का समाचार पाकर सुपार्श्वमती माताजी ने विशुद्धमतीजी को वात्सल्य से प्रेरित होकर संदेशा भिजवाया कि अभी आपके पास समय है, जल त्याग में जल्दी न करें, हम आपके पास आ रहे हैं। सल्लेखना स्थल पर पहुँचते ही दोनों आर्यिकाओं का मिलन-महोत्सव अत्यंत मनमोहक था। ऐसा लगता था कि बेटी की सम्हाल करने माँ आ गई है। फिर सुपार्श्वमती माताजी ने सल्लेखना में संलग्न विशुद्धमतीजी के प्रति जिस वात्सल्य का व्यवहार किया वह अत्यंत सराहनीय था। पूज्य गणिनी 105 श्री सुपार्श्वमती माताजी ने चिन्तापूर्वक और कष्ट उठाकर , अपने से सात वर्ष छोटी आर्यिका विशुद्धमती माताजी की सल्लेखना साधना में, वात्सल्य एवं अपनेपन का वह दृश्य आज भी आँखों के सामने बार-बार झूल जाता है। सुपार्श्वमती माताजी आर्यिका विशुद्धमती माताजी का सिर अपनी गोद में रखे रहतीं और सहज सरल संबोधन से क्षपक को हमेशा सावधान करती रहतीं। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज की बेटी की गोद में जो लेटी हैं, वो आचार्य शिवसागर जी की बेटी है। यह दृश्य देखकर अनायास ही सबका सिर श्रद्धा से नत हो जाता । उन्होंने लगभग बीस आर्यिका माताओं को अपने स्नेह का सहारा देकर उनकी समाधि-साधना कराई है। इसके लिये समाज ने उन्हें 'समाधि-सम्राज्ञी' उपाधि से अलंकृत किया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपार्श्वमती माताजी की तीर्थ निर्माण के क्षेत्र में प्राचीन तीर्थों का संरक्षण एवं संवर्धन में सदैव प्रेरणा रही। माताजी ने विभिन्न स्थानों पर विहार के समय अनेक स्थानों पर चैत्यालयों जिन बिंब प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा स्वाध्याय भवन आदि के लिए निरंतर प्रेरणा दी। आसाम, बंगाल, बिहार, नागालैंड, उड़ीसा, भागलपुर आदि अनेक स्थानों पर माताजी के प्रेरणा से कार्य हुए। श्री सम्मेदशिखर जी में ''मध्यलोक'' का निर्माण आपके द्वारा जैन तीर्थों के निर्माण में शीर्ष स्थान रखता है। अनेक भाषाओं पर अधिकार रखने वाली प्रकाण्ड विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी की लेखनी से चारों अनुयोगों के ग्रंथों की टीका अनुवाद और मौलिक लेखन भी हुआ माताजी के उपयोग की स्थिरता अद्वितीय थी किसी भी कार्यक्रम या धर्मसभा में आपकी लेखनी चलती रहती थी। अष्टपाहुड़, आचारसार, तत्वार्थराजवार्तिक, तत्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड आराधनासार, सागारधर्मामृत, सर्वार्थसिद्धि आदि न्याय-दर्शन-सिद्धान्त-अध्यात्म विषयक वृहद् एवं लघुकाय ग्रन्थों का अनुवाद आपने किया है। भक्तामर स्तोत्र, कल्याणमंदिर स्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र, दशलक्षण धर्म विवेचन, आचार्य अजितसागर जी एवं शिवसागर जी की संस्कृत में पूजन मेरा चिंतवन, मोक्ष की अमरबेल रत्नत्रय, नैतिक शिक्षाप्रद कहानियां, प्रश्नोत्तर शैली से द्रव्यसंग्रह आदि आपके द्वारा अनुवादित एवं लिखित साहित्य से आपने जिन सरस्वती भंडार को समृद्ध किया।

आपकी प्रवचन शैली में चुबंकीय आकर्षण था, सदैव आगम प्रमाण उदाहरणों को लेकर आप विषय का प्रतिपादन करती थीं पर्यूषण पर्व में तत्त्वार्थ सूत्र जी की विवेचना करती थीं , तब आपके सम्मुख कोई ग्रंथ नहीं होता था और लगातार चार-चार घंटे तक एक ही आसन से बैठकर आपका धारा प्रवाह प्रवचन सुनने वाले को ऐसा लगता था कि साक्षात् सरस्वती ही बोल रहीं है। ज्ञान ध्यान तप में लीन समता और धैर्य की मूर्ति साहित्य सृजन में रत रहने वाली आगमनिष्ठ देवशास्त्र गुरू के प्रति अटूट भक्ति रखने वाली आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी की समाधि सल्लेखना आचार्य श्री चैत्यसागर जी ससंघ के सान्निध्य में और आर्यिका गौरवमती माता जी की सतत सेवा के साथ 30 अप्रैल 2012 में बैसाख कृष्ण अष्टमी को प्रभु नाम स्मरण करते हुए पूर्ण सजगता से बड़के बाला जी अजमेर रोड़ जयपुर में सम्पन्न हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के द्वितीय पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

आचार्य वीर सागरजी से दीक्षित श्री शिवसागर जी महाराज तेजस्वी और अनुशासन प्रिय संत थे। वे आचरण के अनुशासन को आत्मानुशासन का मूल मानने वाले थे। सदैव प्रसन्नचित महाराज महामंत्र णमोकार का जाप करते थे। वे निर्दोष आचरण और विशुद्धि को साधक के जीवन में सर्वोपरि स्थान देते थे। उनसे दीक्षित अनेक साधक अपने जीवन में साधना करते हुए मोक्ष मार्ग के पथिक बने। आपसे दीक्षित आर्यिकाओं ने अपने लेखन एवं प्रभावक व्यक्तित्व से अनेक व्यक्तियों को धर्म मार्ग पर लगाकर महती धर्म प्रभावना की एवं सरस्वती भंडार को समृद्ध किया।

आर्यिका चन्द्रमती माताजी

जहाँ समास हो जाते हैं, सतरंगी दुनिया के रंग ठीक उसी बिन्दु से जो होता है वह आत्मध्यान का रंग ऐसा ही कुछ चन्द्रमती माताजी के जीवन में घटित हुआ। धार्मिक शिक्षा और चिंतन मनन ने आपको एक नई दिशा दी, तपस्वी आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी के चरण सान्निध्य और सद्उपदेशों से आपके अंतस में वैराग्य की भावना जागी। श्रीमान् फूलचंद जी एवं कस्तूरी बाई के घर विक्रम संवत् 1956 में सतारा जिले के गिरवी नामक ग्राम में आपका जन्म हुआ। माता पिता ने आपका नाम मानीबाई रखा, बारह वर्ष की उम्र में ही मां का ममतामयी आंचल छिन गया, स्कूली शिक्षा कक्षा चार तक हुई , धार्मिक शिक्षण अध्ययन चिंतन मनन से घर पर ही हुआ। बीस वर्ष की आयु में श्री हीरालाल जी के साथ विवाह संपन्न हुआ, विवाह के आठ वर्ष गृहस्थ जीवन में रहकर वैधव्य का दारुण दुःख झेलना पड़ा। गृहस्थ जीवन की सौगात एक पुत्री रत्न थी विद्युल्लता। वर्तमान की दुःखदायी स्थिति से जीवन की झणभंगुरता का और संसार की असारता के प्रति चिंतन चलता रहा और मन में वैराग्य की भावना प्रबल होती गई। मानीबाई ने कलिंजा आश्रम में आकर धार्मिक शिक्षा प्रास की अपने गहन चिंतन मनन और अभ्यास से सामान्य ज्ञान वाली मानी बाई ने विदुषी महिला के रूप में इसी आश्रम में अध्यापन का कार्य किया। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी का ससंघ चातुर्मास कालिंजा में हुआ तब मानीबाई ने वीरसागर जी महाराज से सातवीं प्रतिमा ले ली इन व्रतों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

15 से 16 वर्षों तक दृढ़ता से पालते हुए अंतस की निर्मलता बढ़ी। आपकी पुत्री विद्युल्लता पर भी आपके गुणों वैराग्य रूप परिणाम आगम के प्रति गहन निष्ठा इन सबका प्रभाव परिलक्षित होने लगा। बाल ब्रम्हचारिणी विद्युल्लता जी ने आचार्य शांतिसागर जी से आजीवन ब्रम्हचर्य व्रत ग्रहण किया और सोलापुर में श्राविका आश्रम में अधिष्ठात्री के रूप में कार्यरत रहीं यह संस्था आपकी कर्मभूमि एवं तपोभूमि दोनों है। जयपुर खानियां जी में परमपूज्य आचार्य वीरसागर से मानीबाई ने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की और आपका नाम चन्द्रमती हुआ । व्रतों का पालन और आगे बढ़ने की भावना से आपके अंदर वैराग्य के भाव हिलोरें लेने लगे। विक्रम सवंत् 2014 में गिरनार जी क्षेत्र पर आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। अपने संघ में रहकर अपने प्रभावक व्यक्तित्व गहन अध्ययन चितंन मनन से स्व-कल्याण केसाथ-साथ धर्म प्रभावना की।

आर्यिका पद्मामती माताजी

माताजी का दीक्षा पूर्व का जीवन धर्ममय रहा। बचपन से ही भक्ति पूजन विनती स्तोत्र पाठ में मन लगता था। व्रती बन त्याग मार्ग पर अग्रसर होते हुए श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। अपने त्यागी जीवन में ध्यान, आराधना, अध्ययन, स्वाध्याय में रत रहीं। अपनी कठोर तपस्या और सरल स्वभाव से धर्म प्रभावना की।

आर्यिका नेमामती माताजी

साधना की डगर पर धार्मिक संस्कार और पूर्व की पुण्य संपदा मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ने में सहायक होती है। ऐसा ही कुछ योग भँवर कुमारी जी के साथ बना। विक्रम संवत् 1955 में जयपुर में श्री रिखवचंद्रजी और मेहताबाई जी के घर आपका जन्म हुआ। इकलौती संतान होने के कारण आपका लालन पालन बड़े लाड़ प्यार से हुआ, विद्यालय की शिक्षा चौथी तक हुई, बचपन से ही आप में देवदर्शन, स्वाध्याय, दान आदि के प्रति रुचि रही और ऐसी ही अभिरुचि वाले श्री गणेशलाल जी के साथ दस वर्ष की उम्र में आपका विवाह हुआ। लगभग चालीस वर्ष तक धर्म साधना करते हुए गृहस्थ जीवन बिताया, इनके पति ने सातवीं प्रतिमा के व्रत आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से धारण किए और दीक्षा लेने के भाव बने। एक दिन अकस्मात प्रातः सामायिक करते हुए श्री गणेशलाल जी का निधन हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया। पति की मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद आत्म कल्याण की भावना से आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली और संवत् 2017 में सुजानगढ़ में आचार्य शिवसागर जी महाराज ही से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और नेमामती जी के नाम को सार्थक करते हुए आप त्यागी जीवन में निरंतर-त्याग तपस्यापूर्वक धर्म प्रभावना और आत्मसाधना में रत रहीं।

आर्यिका विद्यामती माताजी

जीवन में प्रतिकूलता आने पर संसार बेरस और असार लगने लगता है कभी-कभी उस प्रतिकूलता के बीच ज्ञान की एक किरण हमारे वर्तमान और भावी जीवन को सुधार देती है ऐसा ही कुछ शांतिबाई के जीवन में हुआ। शांतिबाई का जन्म लालगढ (बीकानेर) में विक्रम संवत् 1992 में हुआ आपके पिताश्री नेमीचंद जी बाकलीबाल ने तेरह वर्ष की उम्र में आपका विवाह श्री मूलचंदजी के साथ कराया। ब्याह के तीन वर्ष बाद ही आपके पति कलकत्ता से अचानक कहीं चले गए कई वर्षों तक उनके न आने से आप सांसारिक जीवन से विमुख एवं विरक्त हो गईं। कुछ समय बाद शांतिबाई का परिचय 105 श्री आर्यिका इन्दुमती जी एवं सुपार्श्वमती माता जी से हुआ सत्संग का प्रभाव और असीम पुण्य का उदय हुआ और विक्रम संवत् 2017 कार्तिक सुदी 13 को सुजानगढ़ में आर्यिका इन्दुमती एवं सुपार्श्वमती जी के समक्ष द्वितीय पट्टाचार्य 108 आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम आर्यिका विद्यामती माताजी हुआ।

आर्यिका बुद्धमती माताजी

ज्ञान ही अंतस की श्रृद्धा को जीवन में वैराग्य के रूप में प्रगट करता है। श्री बसोरेलाल जी और जमुनाबाई के यहाँ विक्रम संवत् 1967 में एक कन्या का जन्म हुआ, नाम हुआ कस्तूरीबाई। बचपन में आपकी शिक्षा आरा आश्रम में हुई। धार्मिक संस्कारों की सौगात लेकर आपने अपना वैवाहिक जीवन श्री कपूरचंदजी के साथ सानंद बिताया। वैराग्य की भावना बलवती होने से संवत् 1993 में आपने खुरई में आचार्य धर्म सागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। ज्ञान ध्यान तप में लीन रहते हुए संवत् 2017 में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। विभिन्न स्थानों पर चातुर्मास में अपनी चर्या से धर्म प्रभावना की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका जिनमती माताजी

प्रभावती का जन्म म्हसवड़ (महाराष्ट्र) में हुआ। बाल अवस्था में ही माता-पिता का वियोग हो गया। आपका लालन पालन मामा मामी के घर हुआ। कम उम्र में ज्ञानमती माताजी का सम्पर्क मिला और आप व्रती बन गईं। आजीवन ब्रम्हचारिणी बनकर माताजी के साथ आ गईं और माधोराजपुरा (राजस्थान) में आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से क्षुल्लिका की दीक्षा धारण की। न्याय, व्याकरण, करणानुयोग सिद्धांत आदि विषयों के बड़े बड़े ग्रन्थों का अध्ययन किया। सीकर नगर में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आप आर्यिका के व्रतों का अत्यन्त उत्कृष्ट रीति से पालन करती थीं। दर्शन ज्ञान सहित आपका चारित्र सराहनीय था। आप संघस्थ नवदीक्षित आर्यिकाओं की देख रेख, वैयावृति और सेवा के कार्यों में संलग्न रहती थीं। मातृत्व स्नेह से भरपूर होकर परस्पर वात्सल्य का रूप इनमें देखने को मिलता था। सन् 1955 में पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी, क्षुल्लिका वीरमती माताजी के रूप में थीं और चारित्र चक्रवर्ती आचार्यवर्य श्री शांति जी महाराज के सल्लेखना के समय आचार्य श्री के दर्शनार्थ क्षुल्लिका विशालमती माताजी के साथ दक्षिण भारत में विहार कर रही थीं, उन्होंने म्हसवड़ में चातुर्मास किया। उस चातुर्मास के मध्य अनेक बालिकाएँ पूज्य माताजी से कातंत्र व्याकरण, द्रव्य संग्रह, तत्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों का अध्ययन कर रही थीं और उन्हीं बालिकाओं में वह 22 वर्षीया बालिका प्रभावती भी थी। माताजी ने उसके मनोभावों को जानकर अपने वात्सल्य के प्रभाव से प्रभावती को त्यागमार्ग के प्रति आकर्षित किया और सन् 1955 की दीपावली की पावन तिथि में वीरप्रभु के निर्वाण दिवस पर उन्हें आजीवन ब्रम्हचर्य एवं 10वीं प्रतिमा का व्रत दे दिया।

न्याय के परीक्षामुख से लेकर अष्टसहस्त्री आदि उच्चतम ग्रंथों का एवं कातंत्र व्याकरण, जैनेन्द्र प्रक्रिया आदि का अध्ययन माता जी कराती थीं। क्षुल्लिका जिनमती माताजी ने 11 प्रतिमा के व्रतों का परिपालन करते हुए पूज्य माताजी से क्रमशः न्याय, व्याकरण और सैद्धान्तिक ग्रंथों का अध्ययन किया और अपनी कुशाग्रबुद्धि के कारण परम विदुषी हो गईं। वि.सं. 2016 (सन् 1961) कार्तिक शु. 4 के दिन सीकर में (राज.) में आचार्य श्री शिवसागर महाराज से जिनमती माताजी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। सन् 1962 में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माताजी ने सम्मेदशिखर यात्रा के लिए गुरू आज्ञा से संघ से अलग प्रस्थान किया, तब उनके साथ आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिकाश्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी एवं क्षुल्लिका श्री श्रेयांसमती माताजी थीं। उन्होंने जिनमती माताजी को प्रमेयकमल मार्तण्ड का अनुवाद करने की प्रेरणा प्रदान की, वे प्रतिदिन अनुवाद करके प्रायः दिखाती रहती थीं। उन्होंने उस अनुवाद को पूर्ण कर माताजी के करकमलों में समर्पित किया। इस प्रकार आर्यिका जिनमती माताजी 16 वर्ष तक निरन्तर पूज्य माताजी के साथ ज्ञान ध्यान में लीन रहीं। महाराष्ट्र के 'सांगली' नगर में 31 जनवरी 1996 को जिनमती माताजी को रक्त क्षय से कमजोरी अधिक आ गई तब आपने आचार्यश्री वर्धमान सागरजी से विधिवत् समाधि ग्रहण की । आपकी शांत परिणामों से समाधि हो गई।

आर्यिका राजुलमती माताजी

विक्रम संवत् 1964 में अकोला के कारंजा ग्राम में रूपा बाई जी का जन्म हुआ। आप पिता बवनशाजी और माता बजाबाई जी की बड़ी पुत्री थी। बारह वर्ष की उम्र में कारंजा में ही आपका विवाह सेठ नाकोशाजी के पुत्र देवमनशाजी के साथ संपन्न हुआ किन्तु एक-दो वर्ष पश्चात् ही अबोध बालिका पर वज्राघात की तरह वैधव्य का दुःख आ गया। अपने जीवन को धर्ममार्ग पर लगाने के उद्देश्य से सोलापुर आश्रम में अध्यन प्रारंभ किया, लगन और बुद्धिमत्ता के बल पर अध्ययन के बाद उसी आश्रम में अध्यापन का कार्य प्रारंभ कर दिया, जहाँ अबोध बालिका के रूप में प्रवेश लिया था, वहाँ योग्य अधिष्ठात्री बन कर आश्रम में रहीं। पावन पुनीत स्थान और अंतस की विशुद्धि ने आत्मउन्नति का भाव जगाया । तब पूज्य समन्तभद्र जी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिए। विक्रम संवत् 2012 में आचार्य श्री शिवसागर जी का चरण सानिध्य प्राप्त हुआ और विक्रम संवत् 2012 में सिद्ध क्षेत्र गिरनार जी पर क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की और कार्तिक शुक्ल चतुर्थी संवत् 2018 में सीकर (राजस्थान) में पूज्य आचार्य श्री शिवसागर महाराजजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और आर्यिका राजुलमती नाम पाया। आर्यिका राजुलमती ने अपने तप, त्याग, तपस्या एवं सद्उपदेश से अनेक भव्य जीवों को सन्मार्ग पर लगाया और धर्म प्रभावना करते हुए आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर रहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका संभवमती माताजी

नौ गजी साड़ी लिपटी है बदन पर हाथ में कमंडल साथ में पिच्छी धर्म की डगर, पर चलने वाली संभवमती माताजी की यही पहचान। उलातीबाई का जन्म अजमेर में श्री पन्नालालजी के यहाँ पर हुआ। आप पर माता श्री राजमती बाई की धार्मिक भावना का प्रभाव बचपन से ही था पूर्व पुण्य की संपदा एवं धर्ममय जीवन से आपके अंतस में वैराग्य के भाव बने और किशनगढ़ में आर्यिका माताजी के समागम से और उनकी प्रेरणा से आपका मन त्याग के पथ पर अग्रसर होने का बना। अजमेर में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के चातुर्मास में आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की आपने अपनी पवित्र भावनाओं और संयम की दृढ़ता से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

आर्यिका आदिमती माताजी

ममतामयी आँखें पथ है, कठोर साधना की जो पकड़े हैं डोर हम नतमस्तक है उन्हें। प्रशांतमूर्ति आगम रक्षिका पूज्य आर्यिका आदिमती माताजी सम्पूर्ण भारत में धर्मप्रभावना कर रही थीं। आपका बचपन का नाम अंगूरीबाई था श्री जीवनलाल जी और भगवान देवी के यहाँ आगरा में आपका जन्म हुआ। आपका लौकिक शिक्षा आठवीं तक और धार्मिक शिक्षा विशारद तक हुई। पंद्रह वर्ष की अवस्था में विवाह हो गया। विवाह के डेढ़ वर्ष बाद डाकू इनके पति को पकड़ ले गए और मनमानी फिरौती न मिलने से उन्हें मार डाला, पति वियोग से दुःखित हृदय को मात्र एक ही सहारा था, धर्म, सीकर (राजस्थान) में विक्रम संवत् 2018 में आचार्य शिवसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ली, आचार्य कल्प श्रुतसागर महाराज जी से ज्ञानार्जन का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ, व्याकरण, साहित्य, न्याय और दर्शन आदि विषयों में आप पारंगत थीं, आपने नेमीचन्द्राचार्य कृत गोम्मटसार कर्मकाण्ड जैसे महान ग्रंथों की हिन्दी टीका करके समाज को एक अनुपम सौगात दी। पूज्य माताजी ने समयसार कलश (आचार्य अमृतचंद्र स्वामी), पतन से बचिए, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि ग्रंथों की तथा टीका की पूज्य ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से भगवती आराधना ग्रंथ की टीका की । आप बहुत समय तक आचार्य श्री धर्मसागर जी के संघ में रहकर ज्ञान आराधना एवं तपस्या में रत रहीं। आदिमती माताजी अपनी साधना में रत रहते हुये भी सामयिक विषयों पर लेख लिखती रहती थीं। जैन गजट में शिव-आदिगंगा शीर्षक से विभिन्न विषयों पर उनका चिंतन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशित होता था। प्रारम्भ से ही रस परित्याग व्रत आप बड़ी दृढ़ता से करती थीं, इसी भूमिका में हम सामान्यजनों के लिए भोजन संबंधी विचार उन्हीं के शब्दों में शिव-आदिगंगा - जो व्यक्ति जितना अधिक भोजन करेगा वह उतना ही अधिक अस्वस्थ और चिन्ताग्रस्त रहेगा। नियम पूर्वक एवं सावधानी से किये गये भोजन से आचार-विचार में शुद्धि आती है। समता व सहिष्णुता के लिए जरूरी है कि सदैव सादा एवं शुद्ध भोजन करें। पूज्य माताजी लाडनू,कलकत्ता, श्रवणबेलगोला, सोलापुर, सनावद, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास में आपनी आत्मसाधना करते हुए जन-जन के कल्याण के लिए अपने सद्उपदेश एवं लेखनी से मोक्षमार्ग प्रशस्त करती रहीं। शारीरिक अस्वस्थता रहने पर भी आप लगातार ज्ञान, ध्यान, अध्ययन, तप, आराधना आदि में अपना समय व्यतीत करती रहीं। परम तपस्वी विदुषी आर्यिका सौम्य सरल स्वभाव वाली आर्यिका के रूप में आपकी एक अलग ही पहचान थी आपकी लेखनी से आगम ग्रंथों की टीका एवं समाज को सामयिक संदर्भ में मिलने वाले लेखन की यह श्रृंखला अनवरत प्राप्त होती रही थी। परम विदुषी माताजी की समाधि वैशाख कृष्णा एकम विक्रम संवत 2074, 22 अप्रैल 2017 को निवाई (टोंक-राजस्थान) में हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदुषी आर्यिका विशुद्धमती माताजी

हम किसी हरे भरे फलदार वृक्ष की शोभा निहारते हैं उसकी छाया का आनंद लेते हैं। तो मन में ये विचार आता है कि मिट्टी में छोटा सा पौधा रहा होगा, कुशल माली ने इसे खाद पानी और समय-समय पर बड़े परिश्रम से ये सुन्दर आकार दिया होगा। और वृक्ष ने भी जड़ों से रस लेकर अपना विकास किया होगा। ये सभी चिंतन परम विदुषी आर्यिका 105 श्री विशुद्धमती माता जी के व्यक्तित्व निर्माण में सही लगते हैं। उन्होंने अपने जीवन में जो ऊंचाईयां पाई, और अपनी (नारी) पर्याय में उत्कृष्ट पद को प्राप्त किया। ज्ञानार्जन तप, संयम, साधना का फल सल्लेखनापूर्वक मरण कर अपना जीवन सार्थक किया। उनके गृहस्थ जीवन को देखें तो लगता है, कि किसी सुविज्ञ ने सही कहा है

''शानदार था भूत भविष्यत् भी महान है
गर संभालें आप उसे जो वर्तमान है ।''

माता जी अपने साथ पूर्व की पुण्य संपदा लाईं अद्भुत साहस और दृढ़ता के साथ सम्यक पुरुषार्थ द्वारा अपने वर्तमान के जीवन के साथ भावी जीवन भी अच्छा बना लिया । माता पिता से मिली संस्कारों की पूंजी के साथ पूज्य संत श्री गणेश प्रसादजी वर्णी के संपर्क से सदाचार और दया धर्म के संस्कार ही जीवन में सहायक हुए। सिंघई लक्ष्मणलालजी और मथुराबाई के यहाँ विक्रम संवत् 1986 चैत्र शुक्ल तृतीया में रीठी, जिला जबलपुर में एक कन्या का जन्म हुआ नाम रखा गया सुमित्राबाई। थोड़ी सी स्कूली शिक्षा प्राप्त की, तभी पंद्रह वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया, कुछ समय बाद पिता का वियोग हो गया। विवाह के डेढ़ वर्ष बाद ही उन्हे वैधव्य का दुख सहन करना पड़ा। कुछ समय बाद उनके बड़े भाई श्री नीरज जी जिन्हें परिस्थितियों से जूझने की हिम्मत विरासत में मिली थी, वे अपनी विधवा बहिन को अपने साथ घर ले आए। सुमित्रा बाई जी ने इसे अपने कर्मों का फल मानकर साहस से सहा और अपना सारा पुरुषार्थ वर्तमान को संवारने में लगा दिया। ''चिरौंजा बाई जैन महिलाश्रम'' (सागर) में प्रवेश कर दो माह की पढ़ाई में प्रायमरी परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास की। मिडिल का तीन वर्षीय पाठ्यक्रम दो वर्ष में ही पूरा कर लिया। जबलपुर में नार्मल ट्रेनिंग की। बम्बई में एक वर्ष का प्रशिक्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
लेकर आई तब उनके भाई श्री नीरजजी उन्हें श्री गणेश प्रसादजी वर्णी का आशीर्वाद दिलाने ईसरी ले गए। वर्णी जी ने उन्हें सरकारी नौकरी करने को मना किया, और परिग्रह, परिमाण का संकल्प कराया और आदेश दिया कि जिस मातृ संस्था में तुमने शिक्षा प्राप्त की है उसी महिलाश्रम की सेवा तुम्हें करना है वह संस्था छोड़कर कहीं नहीं जाना ।

सुमित्रा जी ने 14 वर्ष तक अध्यापिका पद पर महिलाश्रम को अपनी सेवायें दीं। कई विधवा व असहाय बहनों को सहारा देकर उनका जीवन संवारा । स्वाध्याय का नियम होने से धर्म ग्रंथों का अध्ययन जारी रहा। सागर में पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने कई वर्षों तक अत्यंत वात्सल्य भाव से धर्मग्रंथों का अभ्यास कराया। गर्मी हो या सर्दी पंडितजी प्रातः 4 बजे उन्हें पढ़ाने महिलाश्रम पहुँच जाते थे और बाई की भी ऐसी लगन थी कि अपना पाठ पूरा करके ही सोती थीं। महिलाश्रम का नियम था रात 10 बजे लाईट बंद हो जाती थी तो बाई भोजन में मिलने वाले घी का दीपक से जलाकर अपना पाठ पूरा करती थीं। सुमित्राजी का सेवाकाल सेवा के साथ व्यक्तित्व निर्माण का भी समय रहा। उन्होंने विद्याध्यन कर ''साहित्य रत्न'' ''विद्यालंकार '' आदि उपाधि प्राप्त की। ज्ञान के साथ-साथ जीवन में संयम की भावना अंकुरित होने लगी धर्म-आराधना और धर्म-प्रभावना के कार्य ही सर्वोपरि हो गये। बिहार, बंगाल और आसाम तक धर्मोपदेश के लिए यात्राएँ करने लगीं। उन्ही के प्रयासों से महिलाश्रम में श्री पार्श्वनाथ जिन चैत्यालय की स्थापना हुई। इन सभी उपलब्धियों में सबसे ज्यादा सहायक हुआ पूज्य क्षुल्लक श्री गणेश प्रसादजी वर्णी का चरण सान्निध्य एवं आशीर्वाद। ईसरी प्रवास में वर्णीजी की समाधि के अंतिम पांच छह वर्षों तक प्रति वर्ष वर्णी जयंती पर सब परिजन एवं बाई जी ईसरी जाते थे। सन् 1961 में वर्णी जी की सल्लेखना समाधि के दृश्यों को देखकर सुमित्राबाई जी के मन में वैराग्य के अंकुर पनपने लगे।

मणिकांचन संयोग मिला कि चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के द्वितीय पट्टाचार्य परम तपस्वी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के संघ के तपस्वी महामुनि धर्मसागर जी (जो बाद में आचार्य बने) का अगले ही वर्ष सागर में चातुर्मास हुआ। संघस्थ मुनि वैराग्य के साधक श्री सन्मति सागर के सद्उपदेशों ने सुमित्रा बाई के जीवन की दिशा ही बदल दी। बहुत चिंतन मनन करके संयम ग्रहण करने का साहस जुटाया और विदुषी सुमित्रा बाई ने मुनि श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मसागर जी के चरणों में सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये एवं उसी दिन गृह त्याग का भी संकल्प लिया। कुछ समय प्रतिमा पालन के बाद उन्हीं मुनिराज के चरणों में आर्यिका दीक्षा के लिए भी श्रीफल अर्पित कर दिया मुनिराज ने कहा हमारे साथ कोई आर्यिका माताजी नही हैं। अतः तुम्हे आचार्य श्री शिवसागर जी की शरण में जाकर प्रार्थना करना चाहिए। वहाँ संघ में चार माता जी हैं। पूज्य आचार्य श्री शिवसागर जी अपने संघ सहित बुंदेलखंड में ही विहार कर रहे थे। उनका चातुर्मास श्री क्षेत्र पपोरा जी में निश्चित हुआ । आचार्य श्री शिवसागर जी से दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

विक्रम संवत 2021 की श्रावण शुक्ला सप्तमी 14 अगस्त 1964 को प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महाराज के द्वितीय पट्टाचार्य चारित्र शिरोमणी आचार्य शिवसागर जी ने अतिशय क्षेत्र पपौरा जी के प्रांगण में सुमित्रा जी को आर्यिका दीक्षा देकर अपने संघ में प्रवेश दिया और वे बन गई आर्यिका विशुद्धमती माता जी। माताजी की दीक्षा होते ही शास्त्राभ्यास प्रारंभ हो गया । पूज्य श्रुतसागरजी महाराज ने जैन सिद्धांत का अध्ययन कराया। पूज्य श्री अजित सागरजी महाराज ने इन्हें न्याय और व्याकरण शास्त्रों का अध्ययन कराया गणित का अभ्यास एवं षटखण्डागम सिद्धांत के स्वाध्याय में पं. रतनचंदजी मुख्तार सहयोगी बने, माता जी ने लगन एवं परिश्रम से शीघ्र ही ज्ञानार्जन कर लिया ।

विशुद्धमति माताजी निर्भीक एवं स्पष्ट वक्ता थीं। आगम के अथाह सागर में गोते लगाकर उन्होंने जो मुक्ता माणिक चुने उन्हे सहज सरल भाषा में भक्तों को देकर उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। वे हमेशा कहती थीं कि कुछ नियम लेकर जिनवाणी का पाठन एवं श्रवण करो तो मार्ग अवश्य मिलता है। प्राकृत संस्कृत एवं हिन्दी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था जैन आगम का अध्ययन करते-करते चिंतन मनन हर समय चलता रहा। आचार्य श्री शिवसागर जी के आदेश एवं मुनिश्री श्रुतसागर जी एवं अजितसागर जी के प्रेरणा से माताजी ने जिनवाणी लेखन प्रारंभ किया। प्रारंभ में अनेक जनोपयोगी रचनाएं की। उनका लेखन दीक्षा के 4-5 वर्षों बाद प्रारंभ होकर अनवरत जारी रहा उनके समाधि साधना काल में भी 30 नवम्बर 2001 तक चलता रहा ।

पूज्य 105 विशुद्धमति माता जी की श्रुत सेवा भाषा टीकाएं :

1. सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमीचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार टीका।, भट्टारक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक टीका।, यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोयपण्णत्तीः हिन्दी टीका (तीन खण्डों में), क्षपणासार, अमितगति निसंगयोगिराज विरचित-योगसार प्राभृत (प्रश्नोत्तरी टीका), मरणकण्डिका (प्रश्नोत्तरी टीका)

मौलिक रचनाएं: 1. श्रुतनिकुंज के किंचित् प्रसून 2. गुरू गौरव 3. श्रावक सोपान और बारह भावना 4. आनंद की पद्धति अहिंसा 5. निर्माल्य ग्रहण पाप है 6. केवली विधान

प्रश्नोत्तर लेखन: 1. धर्मप्रवेशिका प्रश्नोत्तर माला 2. धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला 3. छहढाला 4. इष्टोपदेश 5 स्वरूपसम्बोधनपंचविंशति

संकलन - सम्पादन: 1 वत्थुविज्जा (खण्ड 1 - गृहशिल्प) 2. वत्थुविज्जा (खण्ड 2-मन्दिरशिल्प) 3. श्रमणचर्या 4. समाधिदीपक 5. दीपावली पूजनविधि 6. श्रावक सुमन संचय 7. स्तोत्र संग्रह 8. श्रावक सोपान 9. आर्यिका आर्यिका है 10. संस्कार ज्योति 11. पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण सामायिक विधि 12. वृहद् सामायिक पाठ एवं व्रती श्रावक प्रतिक्रमण 13. आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का संक्षिप्त जीवनवृत्त 14. रात्रिक/दैवसिक प्रतिक्रमण (अन्वयार्थसहित) 15. पाक्षिकादि प्रतिक्रमण (अन्वयार्थसहित) 16. वास्तुविज्ञान परिचय 17.नित्यनियमपूजा 18. शान्तिधर्मप्रदीप 19. नारी बनो सदाचारी 20. महावीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थः एक अनुशीलन 21. ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती 22. चारित्र चक्रवती आचार्य शान्तिसागर चरित्र। सामान्य केवली विधान, श्री 1008 चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र पूजन, आचार्य शिवसागरजी पूजन, आचार्य कल्पश्रुत सागरजी की पूजा, आचार्य वर्द्धमान सागर जी की पूजा, षटआचार्यों की अर्घावली प्राकृत व हिन्दी में। माताजी ने वर्तमान पट्टाचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी की पूजा की जयमाल में पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के गुण समाहित करने उपक्रम किया।

हो शांति सिंधु सी निर्भयता, हो वीर सिंधु सी निर्मलता
शिवसागर जी सा अनुशासन हो, हो धर्म सिंधु सी निष्पृहता
संयत वाणी चिंतन शक्ति से, हो अजित सूरि सी दृढ़ता
इन सर्व गुणों का संचय हो, वृद्धिंगत हो मन की मृदुता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो मार्ग आपका निष्कंटक, यशवति बने यह परंपरा यशवति बने यह परंपरा

पूज्य माता जी की प्रेरणा से अनेकों स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा चैत्यालय निर्माण के कार्य सम्पन्न हुये । जोबनेर समाज ने दिगम्बर जैन महावीर चैत्यालय का निर्माण एवं वेदी प्रतिष्ठा आपके सानिध्य में कराई । अशोक नगर (उदयपुर) में नवीन जिनालय और श्री शिवसागर सरस्वती भवन का निर्माण आपकी प्रेरणा से हुआ, अलयारी ग्राम में जिन मंदिर का जीर्णोद्धार नवीन वेदी प्रतिष्ठा और अनेक स्थानों पर कलशारोहण महोत्सव आपकी प्रेरणा से हुए जैन पाठशालाएं खोली गईं। आर्यिका विशुद्धमती माताजी ने अपने जीवन में सिद्धांतों के साथ कभी समझौता नहीं किया, आपने आगम परंपरा और गुरू परंपरा को हमेशा सर्वोपरि रखा। आपके आगम सम्मत संबोधन और प्रभावक व्यक्तित्व से सहज ही धर्मनिष्ठ श्रावक श्राविकाएं आपसे जुड़ते गए, जिन्होंने आपसे व्रत नियम लेकर अपने जीवन को धन्य किया।

स्वस्थ शारीरिक अवस्था में ही पूज्यमाताजी ने 16 जनवरी 1990 को पूज्य आचार्य अजित सागर जी महाराज के समक्ष बारह वर्ष की उत्कृष्ट सल्लेखना के संकल्प की भावना व्यक्त की और उनसे सल्लेखना व्रत की याचना करी। आचार्य महाराज ने उन्हें आशीर्वाद देकर सल्लेखना का नियम दिया। कुछ समय बाद ही आचार्य महाराज की समाधि हो गई, तो पंचम पट्टाचार्य श्री वर्धमान सागरजी माताजी की समाधि हेतु निर्यापकाचार्य बने। व्रत को लेते ही माताजी ने अपने शरीर को कृश करना प्रारंभ कर दिया आहार में कमी एवं उपवास अधिक होने लगे। 1998 का चातुर्मास प्रारंभ होते ही एक दिन आहार एक दिन उपवास प्रारंभ हो गया। उनका शरीर क्षीण हो रहा था, पर आत्मबल निरंतर बढ़ रहा था। 2000 के चातुर्मास में वे दो दिन के अंतर से आहार लेने लगी। आषाढ़ शुक्ला सप्तमी 27.06.2001 को भगवान पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक दिवस और अपने दीक्षा दिवस के अवसर पर माता जी ने पूज्य आचार्य वर्धमान सागर जी के समस्त संघ के समक्ष सबसे क्षमा याचना की और सभी प्रकार के अनाज का जीवन पर्यंत के लिए त्याग कर दिया। दो दिन के अंतर में लेने वाले आहार में दूध छाछ केला और फल ही रहे। तीन महिने के भीतर क्रमशः केला दूध फिर छाछ का भी त्याग कर दिया। 9 दिसम्बर 2001 को माता जी ने पूज्य आचार्य वर्धमान सागर जी एवं संघ की उपस्थिति में आचार्य जी से अनुमति और आशीर्वाद लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैया गृहण का अनुष्ठान किया। अब आहार में मुसम्बी का रस एवं जल मात्र लेने लगी। 3 जनवरी 2002 को त्याग करके 2-3 दिन के अंतर से मात्र जल की प्रक्रिया अपनाई । 16 जनवरी 2002 को बारह वर्षीय सल्लेखना की अवधि पूर्ण होने पर माता जी ने जल लेने का भी त्याग कर दिया। जल त्याग से छह दिन की साधना के बाद 22 जनवरी 2002 को प्रातः साढ़े चार बजे ब्रम्हमुहूर्त में आचार्य महाराज और गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी से पंचनमस्कार सुनते हुए अंतिम सांस ली। संयमी जीवन का शानदार समापन हुआ।

आर्यिका अरहमती माताजी

हमारी चेतना के शांत सरोवर में जब विषमता और अशांति होती है उसे शांत करने का उपाय त्याग की भूमिका में ही है। श्री गुलाबचंद जी और हरिणीबाई के घर आपका जन्म हुआ और आपका नाम कुंदनबाई रखा गया, कुंदनबाई का जीवन में वैधव्य के आने से मन विचलित रहने लगा लौकिक और धार्मिक शिक्षा न होने पर भी आपके जीवन में धर्म के संस्कार थे। पूर्व में मिला सत्संग जीवन में विरक्ति का कारण बना इस भावना के फलीभूत होने में परिवार में हुए महापुरुषों त्यागीजनों का योगदान भी कम नहीं रहा। कुंदनबाई के जेठ मुनि श्री चन्द्रसागर जी बने और चाचा आचार्य श्री वीरसागरजी थे। मुनि श्रेयांस सागर जी की माता होने का गौरव आपको प्राप्त हुआ था। आपको मुनि श्री सुपार्श्वसागर जी का चरण सान्निध्य लगातार कई वर्षों तक मिला जिससे वैराग्य की भावना फलीभूत हुई। कुंदनबाई ने 108 मुनि श्री सुपार्श्वसागर जी से संवत् 2020 में क्षुल्लिका दीक्षा ली और अगले ही वर्ष संवत् 2021 में अपने क्षुल्लिका दीक्षा गुरू सुपार्श्वसागरजी महाराज के साथ परम पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी के संघ में पहुंच कर शिवसागर महाराज से महावीर जी में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका अरहमती बन गईं। त्याग तपस्या से अरहमती अपनी चर्या में बहुत कठोर रहती थीं। नमक, तेल, दही का त्याग कर रखा था। माताजी ने चारित्र शुद्धि, कर्मदहन, तीसचौबीसी जैसे व्रत कई बार किए, आपकी आत्मसाधना, तप और त्याग की वृत्ति से समाज में बहुत धर्म प्रभावना हुई।

आर्यिका श्रेयांसमती माताजी

जो ज्ञानीजन प्राप्त सामर्थ्य का सदउपयोग करके त्याग का मार्ग अपनाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं उनका पुरुषार्थ सम्यक् दिशा में होने से विशेष सार्थकता प्रदान करता है। आर्यिका श्रेयांसमती जी का गृहस्थ अवस्था का नाम लीलावती था श्रीदुलीचंद जी बड़जात्या एवं माता सुन्दरबाई के घर 10 अगस्त सन् 1925 को पूना (महाराष्ट्र) में आपका जन्म हुआ। लौकिक शिक्षा पांचवीं तक हुई आपका विवाह श्री मूलचंद जी पहाड़े के साथ हुआ और गृहस्थ जीवन में दो पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म दिया। आपके पति श्री मूलचंद जी पहाड़े ने वैराग्य मार्ग अपनाया और जैनश्वरी दीक्षा लेकर मुनि श्रेयांससागर जी हुए। पति के दीक्षित होने पर आपने भी विक्रम संवत् 2021 में आचार्य शिवसागर महाराज से शांतिवीरगनर (महावीर जी) में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और श्रेयांसमती माताजी कहलाईं। त्याग तपस्या के मार्ग पर चलते हुए अपनी त्यागवृत्ति से खूब धर्मप्रभावना की। आपने तेल, घी, दही, नमक आदि का आजीवन त्याग कर दिया था।

आर्यिका कनकमती माताजी

त्याग, तप, चारित्र के क्षेत्र में आर्यिकाओं का सर्वश्रेष्ठ स्थान है और यह मणी कांचन संयोग होता है कि तप आराधना के साथ ज्ञान आराधना होती रहे। श्री सिंघई हजारीलालजी के घर चिरोंजाबाई का जन्म हुआ बड़ागांव (जि. टीकमगढ) में। सामयिक प्रथा के अनुसार अल्पवय में ही कारीटोरन के श्रीदयानंद जी के साथ आपका विवाह हुआ। सोलह वर्ष की उम्र में ही आपको वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा। कुछ समय बाद महिला आश्रम सिवनी, उदासीन महिला आश्रम इंदौर तथा महिला आश्रम सागर में धर्मध्यान करते हुए आपने विशारद तक का अध्ययन किया उसके बाद आप अध्यापन कार्य में लगी। सागर, दुर्ग और डाल्टनगंज में आपने सेवाएं दी 108 श्री विमलसागर जी महाराज से सातवीं प्रतिमा लेकर व्रती जीवन का शुभारंभ किया। द्वितीय पट्टाचार्य आचार्य श्री शिवसागर महाराज से महावीर जी में कनकमती जी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। कनकमती जी ने उग्र तपश्चरण की राह पकड़ी और कई रसों का आजीवन त्याग कर दिया। अनेकानेक स्थानों पर चातुर्मास में और विहार में जन-जन के मन में आपकी त्याग तपस्या से खूब धर्मप्रभावना हुई।

आर्यिका भद्रमती माताजी

त्याग, तपस्या, तप और साधना शब्दों में कही गई वहीं बातें सार्थक हैं जिन उद्देश्यों को अपनाया आपने। आपने बालाआश्रम आरा में ब्रम्हचारिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंदाबाई से शिक्षा ग्रहण की। सैद्धांतिक ग्रंथों का गहन अध्ययन किया और लाड़नू में 25 वर्ष तक अध्यापन का कार्य किया । अनेक बालिकाओं को धार्मिक शिक्षण दिया, कुंडलपुर क्षेत्र के समीप कुम्हारी ग्राम में श्री परमलाल जी और हीराबाई के घर आपका जन्म हुआ। विवाह के एक वर्ष बाद ही गृहस्थ जीवन का सुख छिन गया और आपने अपनी जीवन धारा को धर्ममार्ग की ओर मोड़ दिया। सन् 1963 में आचार्य श्री धर्मसागर महाराजजी के चातुर्मास में खुरई में आपने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की तथा आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आप अधिकांश समय आचार्य श्री धर्मसागरजी के संघ में रहकर सतत् आत्मसाधना में लीन रहीं। आचार्य श्री वर्धमान सागरजी के संघ में तारंगा सिद्धक्षेत्र के चातुर्मास में आपकी समाधि हुईं।

आर्यिका श्रेष्ठमती माताजी

''जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'' श्रेष्ठमती माताजी धर्म आचरण को महत्व देते हुए अपने लक्ष्य प्राप्ति की भावना में रत थीं। आपका जन्म फतेहपुर सीकरी में हुआ था। आपके पिता का नाम वासुदेव और माता इन्द्रादेवी थीं। परिवार में दो भाई बहिन थे । लौकिक शिक्षा तीसरी तक हुई थी। माता-पिता ने आपका विवाह श्री नेमीचंद जी के साथ कर दिया, अंतस में वैराग्य के भाव होते रहे और आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के संघ का आगमन आपके नगर में हुआ और आचार्य श्री से विक्रम संवत् 2018 में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की आर्यिका ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में रहीं। आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और आर्यिका श्रेष्ठमती माताजी बन गईं । आप अपने नाम के अनुसार संसार से अनासक्त रहकर तप, त्याग, तपस्या में लीन रहीं। चारित्रशुद्धि व्रत के उपवास करते हुए अनेक स्थानों पर विहार कर चातुर्मास में अपनी कठोर चर्या से मोक्षमार्ग पर चलती रहीं।

आर्यिका कल्याणमती माताजी

मानवतावादी संत श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के चरणसान्निध्य से विलासमती जी के जीवन में वैराग्य की भावना बलवती हुई। विलासमती जी का जन्म मुबारिकपुर (मुजफ्फरनगर) में हुआ आपके पिता श्री समयसिंह जी व माता समृद्धिबाई थीं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा सामान्य हुई आपने गृहस्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन भी व्यतीत किया। वर्णी जी के जीवन से प्रभावित होकर आपने सम्मेद शिखर जी में सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये। व्रती जीवन बिताते हुए विक्रम संवत् 2022 में शांतिवीरनगर में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की तथा कोटा में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से ही आर्यिका दीक्षा ली और कल्याणमती नाम पाया। कल्याणमती माताजी ने महावीर जी, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर खूब धर्म प्रभावना की आहार में अधिकांश रसों का त्याग करती थीं। और तीन रसों का आजीवन त्याग कर दिया चारित्र शुद्धि व्रत और अनेक व्रतों को करती हुई आत्मकल्याण में रत रहते हुए अपनी चर्या से जनमानस में उनकी अनोखी छवि बनी।

आर्यिका सुशीलमती माताजी

आर्यिका सुशीलमती माताजी ने संसार के पंक से निकलकर मोक्षमार्ग पर चलने का उपक्रम किया। गृहस्थ जीवन में होने वाले पापों का प्रक्षालन सिर्फ त्याग मार्ग अपनाने से ही हो सकता है। मस्तापुर निवासी श्री मोहनलाल एवं गंगादेवी के घर एक कन्या का जन्म हुआ, उन्होंने नाम रखा काशीबाई । उनके माता-पिता ने उनका विवाह श्री धर्मचंद जी के साथ कर दिया। अंतस में धार्मिक भावना प्रगाढ़ होने से संवत् 2009 में घर छोड़कर आचार्य श्री शिवसागर महाराजजी से पपौरा जी में ब्रम्हचर्य व्रत लिया। गृहस्थ जीवन में आपने अध्यापन का कार्य भी किया और संवत् 2022 में महावीर जी में आचार्य श्री शिवसागर महाराज जी से क्षुल्लिका दीक्षा ली और कोटा में ही आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर अपनी साधना में रत रहीं।

आर्यिका सन्मतिमती माताजी

सांसारिक सुख सुविधाएं एवं धन सपंदा हमें तभी तक प्रभावित करती हैं जब तक उसकी लालसा हमारे अंदर है जब जीवन में धर्म और वैराग्य हिलोरे मारने लगता है तब सांसारिक संपदा बेमानी हो जाती है। कमलाबाई के जीवन में वैधव्य के बाद सांसारिक संपदा के प्रति अरुचि का भाव आया और उन्होनें जीवन को साधुओं के चरण सानिध्य में त्याग मार्ग पर चलने का मन बनाया। कमलाबाई का जन्म विक्रम संवत् 1997 में चैत्र शुक्ल 9 को मनगोठड़ी गांव में हुआ । आपके पिताश्री सूरजमल जी कासलीवाल एवं माता सूरजबाई थी। माता पिता ने आपका विवाह अल्पआयु में ही श्री किस्तूरचंद जी काला के साथ कर दिया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी एक पुत्री जिसका नाम था गुणमाला। युवावस्था में ही आपके पति का स्वर्गवास हो जाने से आपका मन विरागी हो गया और 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज से आपने दूसरी एवं पांचवी प्रतिमा के व्रतों को ग्रहण किया। धर्ममार्ग पर चलते हुए विक्रम संवत् 2022 में कार्तिक शुक्ल दशमी को आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली। आठ माह पश्चात् आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली एवं नाम आर्यिका सन्मतिमती माता जी हुआ। सन्मतिमती माता जी धर्म ध्यान में लीन रहते हुए स्वाध्याय एवं जाप करती हुई त्याग मार्ग पर अग्रसर होती गईं। अपना समय मंत्र जाप्य में विशेष रूप से व्यतीत करती थीं। और धर्म कथानक के रूप में आत्मकल्याण का उपदेश देकर धर्म प्रभावना भी खूब करती रहीं।

आर्यिका विनयमती माताजी

शांत और स्थिर स्वच्छ जल में जिस प्रकार हम अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं, ठीक इसी तरह विनयमती माताजी का पूर्व का जीवन था। जब आप सागर महिला आश्रम में सुमित्राबाई (विशुद्धमती माताजी) के साथ अध्यापन का कार्य करती थीं, तब आपका सौम्य व्यक्तित्व और अंतस का वात्सल्य परिलक्षित होता था। विनयमती माताजी का गृहस्थ अवस्था का नाम राजमती था, जन्म मड़ावरा (ललितपुर) में हुआ। आपके पिता श्री मथुराप्रसाद एवं माताजी सरस्वती देवी थीं। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। श्री चतुर्भुज के साथ आपका विवाह हुआ। वैधव्य का दुःख झेलकर संसार में मन नहीं रमा और आगे लौकिक और धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर सागर महिला आश्रम में अध्यापन का कार्य करने लगीं। राजमती जी और सुमित्राबाई जी अपने अध्यापनकाल में एक साथ रहती थीं। दोनों में अपार स्नेह था। सुमित्राबाई ने आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से पपौरा जी में दीक्षा ली, तभी से राजमती जी प्रायः साथ रहने लगीं और विक्रम संवत् 2023 में कोटा में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की, आपके विनीत सरल स्वभाव जैसा ही आपका नाम हुआ, विनयमती माताजी। स्वभाव में सरलता और अपनी चर्या में कठोर अनुशासन रखते हुए मीठा नमक और दही का आजीवन त्याग कर दिया था। आपकी भक्ति व समर्पण अद्वितीय था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षुल्लिका सुव्रतमती माताजी

अबोध अवस्था में विवाह और वैधव्य दोनो का अर्थ न समझने वाली शांतिबाई का जीवन प्रारंभ हुआ। पिता ने आपको घर पर रखकर कक्षा छः तक स्कूली शिक्षा साथ में जैन पाठशाला में धार्मिक शिक्षा भी दिलाई । पिताश्री भगवानराव और माता सरस्वती देवी थीं। संवत् 1991 में महाराष्ट्र के हिंगोली ग्राम में आपका जन्म हुआ। नौ वर्ष की उम्र में लोहगांव में श्री अन्नाराव जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री मारोतीराव जी के साथ आपका विवाह हुआ। छः माह पश्चात् आपके पति का देहावसान हो गया । कुछ वर्षों बाद आर्यिका अनन्तमती माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर आप गृहस्थ जीवन त्याग करके उनके साथ ही विहार करती हुई व्रतों का अभ्यास करने लगी। खुरई में मुनि धर्मसागरजी के दर्शन से आपकी वैराग्य भावना को बल मिला और विक्रम संवत् 2020 में उनसे ही आपने सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिए और एक वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् 2021 में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से पपौराजी में आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली और आप सुव्रतमती माताजी बनीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के तृतीय पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य धर्मसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

पूज्य धर्मसागर जी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्ति सागरजी की परम्परा के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीर सागरजी के शिष्य थे। वे अत्यन्त निष्पृह और दो टूक सीधी बात करने वाले थे। सहज मुस्कान चेहरे पर सदैव दृष्टिगोचर होती थी। आचार्य शिवसागरजी की समाधि के पश्चात आचार्य पद पर आसीन होते ही उसी दिन आचार्य धर्म सागरजी द्वारा 11 दीक्षाएं सम्पन्न हुई। आचार्य धर्म सागर जी से दीक्षित आर्यिकाओं ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जैन संस्कृति में विशेष योगदान दिया।

आर्यिका अनन्तमती माताजी

धन वैभव से संपन्न उदारशील व्यक्तित्व के धनी सेठ श्री हीरालाल जी और श्रीमती स्वरूपाबाई के घर औरंगाबाद के कन्नड़ ग्राम में विक्रम संवत् 1939 में एक कन्या का जन्म हुआ, उनका नाम सोनाबाई रखा गया। नाम के अनुसार ही उन्होंने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर, दीक्षा के अवसर पर एक अच्छी धनराशि दान स्वरूप दी। अनेक जिन बिम्ब विराजमान कराए। आप बचपन से ही संसार से उदासीन रहीं। विवाह के नौ वर्ष पश्चात् आपके पति श्री सुखलाल जी का देहावसान हो गया। आपके अंतस में धर्मभावना से त्याग के मार्ग को बल मिला। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी के सद्उपदेशों से प्रभावित होकर उनसे सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और संघ में ही रहकर तन मन धन से सेवा करती रहीं। विक्रम संवत् 2006 में नागौर में आचार्य वीरसागर से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की आचार्य श्री ने आपका नाम अनन्तमतीमाता जी रखा। अनन्तमती जी ने अपनी कठोर चर्या और तप साधना से आत्मकल्याण का उपक्रम किया। कठिन व्रतों को करते हुए विक्रम संवत 2022 में खुरई (सागर) में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की ऐसी उदारमना तपस्विनी त्याग मार्ग पर अग्रसर रहीं।

आर्यिका अभयमती माताजी

पुष्पित पल्लवित बाग को देखकर उस सुघड़ माली का श्रम दृष्टि गोचर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है ऐसे ही आर्यिका अभयमती माताजी की गृहस्थ अवस्था की माँ श्रीमती मोहनीदेवी जी एवं पिता श्री छोटेलाल जी द्वारा दिए गए धार्मिक संस्कार दिखाई देते हैं और उसके साथ मणिकांचन संयोग मिला बड़ी बहन मैना जो वर्तमान में आर्यिका ज्ञानमती माताजी हैं। इनकी ही प्रेरणा एवं वात्सल्य ने कु. मनोवती को आर्यिका अभयमती माता जी बना दिया। आर्यिका अभयमती माताजी ने 69 वर्षीय जीवन काल में 48 वर्षों तक साधु चर्या (त्यागमय जीवन) में जीवन बिताया। आपका जन्म टिकैतनगर (बाराबंकी) में सन् 1942 में हुआ आपका लौकिक अध्ययन पांचवी कक्षा तक हुआ। बच्चों की स्वाभाविक चंचलता से विपरीत मनोवतीजी शांत स्वभावी थीं और गंभीरता से धार्मिक अध्ययन ही आपके जीवन का प्रमुख कार्य था। साधु सत्संग धर्मोपदेश सुनने की ओर आपका उत्साह देखते ही बनता था। कुछ समय बाद आप ब्रम्हचर्य व्रत लेकर पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास अध्ययन करने लगीं। साधुचर्या के प्रति आपकी दृढ़ता ने आपको भावी त्यागमय जीवन प्रारंभ करने में बहुत सहायता की।

लाडनू में मानस्तंभ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आचार्य 108 श्री शिवसागर जी महाराज से एक वर्ष के लिए ब्रम्हचर्य व्रत ले लिया एवं संघ से साथ रहने लगीं। संघ के साथ शिखर जी की यात्रा की । आरा पहुंचने पर आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज से पांचवी प्रतिभा के व्रत लिए, शिखरजी में वन्दना करते हुए पारसनाथ टोंक पर आपने माताजी से सातवीं प्रतिमा के व्रत लिए थे। मनोवती जी ने तीर्थराज में अनेक वंदना कीं श्री गिरनार जी तीर्थ की यात्रा करके आईं और बार-बार पूज्य माताजी से दीक्षा हेतु आग्रह करने लगीं। उनकी उत्कृष्ट भावना को देखते हुए हैदराबाद में ज्ञानमती माता ने उन्हें क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की और मनोवती जी बन गई क्षुल्लिका अभयमती माताजी। आपने माताजी से आर्यिका दीक्षा के लिए आग्रह किया तो उन्होंने आचार्य श्री की अनुमति आवश्यक बताई। अतिशय क्षेत्र महावीर जी में सन् 1969 में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज की समाधि हुई और मुनि धर्मसागर जी महाराज को सन् 1969 फाल्गुन सुदी अष्टमी को आचार्य पद प्रदान किया गया। उसी दिन फाल्गुन सुदी अष्टमी को आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के कर कमलों से कई दीक्षाएं संपन्न हुईं। जिसमें क्षुल्लिका अभयमती माताजी को आर्यिका अभयमती माताजी के रूप में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज ने प्रथम आर्यिका दीक्षा प्रदान की। माताजी ने आगम के अनुसार चर्या का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालन करते हुए देश के अनेक नगरों मे विहार करते हुए जगह-जगह खूब धर्म प्रभावना करी। कई वर्षो तक बुंदेलखंड में विभिन्न स्थानों पर चातुर्मास करे और अनेक स्थानों पर स्वाध्याय मंडल की स्थापना कर समाज में महिलाओं को विशेष रूप से जाग्रत किया। अनेक ग्रंथों का लेखन कार्य किया और कई ग्रंथों का पद्य में अनुवाद किया। उन्होंने कई मौलिक रचनाएं करके जैन साहित्य सेवा में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जैसे पीयूष वाणी, महावीर अमर संदेश, वाल विज्ञान ज्योति प्रथम एवं द्वितीय भाग कुन्दकुन्द गीता, समय-अमृत कलश पद्यावलि, पुरुषार्थ सिद्धि पद्यावलि आत्मानुशासन पद्यावलि, परमात्म प्रकाश पद्यावलि एवं कई विधान और कई क्षेत्रों का इतिहास लिखकर अपनी साहित्य साधना से जैन आगम में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपनी ही पद्यावलियों का जब वे सस्वर पाठ करतीं वह आत्मकल्याण में सहायक तो था ही साथ ही सुनने वाले को भी धार्मिक भावना से ओतप्रोत कर देतीं थीं। पूज्य अभयमती माताजी ने साधक के जीवन की साधना का उत्कृष्ट फल समाधि सल्लेखना का प्रारंभ ज्ञानमती माताजी के पावन सानिध्य में किया। जुलाई माह से अभयमती माताजी का स्वास्थ्य निरंतर गिरने लगा । 9 अगस्त 2012 गणिनी प्रमुख ज्ञानमती माताजी ने उनको समस्त आहार जल का त्याग करा दिया। समस्त संघ द्वारा भक्तिपाठ तथा णमोकार मंत्र का पाठ करते रहे अभयमती माताजी ने स्वयं बोलकर समस्त साधु संघ एवं सभी प्राणियों से क्षमाभाव किया और उसी दिन संध्या को बड़ी ही शांतिपूर्वक अपनी वर्तमान पर्याय का समापन हस्तिनापुर क्षेत्र में किया।

आर्यिका गुणमती माताजी

अतिशय क्षेत्र महावीर जी में श्री मूलचंद जी पांडया के घर एक कन्या रत्न का जन्म हुआ नाम रखा गया अशरफी बाई। बचपन से आपको भजन कीर्तन में विशेष रुचि थी। आपकी धार्मिक रुचि यथावत् रही आपने अपने दोनों पुत्रों एवं पुत्री को लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी दिए। धर्मसाधना करते हुए आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये महावीर जी में जन्मी अशरफी बाई ने महावीर जी में ही पंचकल्याणक के अवसर पर आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की आपका नाम हुआ गुणमती। आर्यिका गुणमती माताजी ने दीक्षा के पश्चात् अनेक तीर्थों की वंदना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुए अपने प्रवचनों के माध्यम से खूब धर्मप्रभावना की और मां जिनवाणी का प्रसाद बांटते हुए अनेक भव्य जीवों को धर्ममार्ग पर लगाया। आपकी सहज सरल वृत्ति और गुरू के प्रति समर्पण का भाव और अटूट भक्ति ने आपको एक अलग ही पहचान दी।

आर्यिका विद्यामती माताजी

मानव जीवन में सुख और दुख निरंतर उसी तरह आते रहते हैं, जिस प्रकार रथ के पहिए का एक हिस्सा ऊपर और एक हिस्सा नीचे निरंतर घूमता रहता है। ऐसा ही जीवन आर्यिका विद्यामती माताजी का रहा। मुबारिकपुर (अलवर जिलें) में आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम श्री चिरंजीलाल एवं माता का नाम इमरती बाई था। पालम दिल्ली में आपने गृहस्थ जीवन बिताते हुए दो संतानों को जन्म दिया। पति का वियोग होने पर लगभग 20 वर्ष तक आप शिक्षिका के पद पर कार्यरत रहीं। धार्मिक आस्था एवं पूर्व का पुण्य फलीभूत हुआ। आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से संवत् 2025 को आपने आर्यिका दीक्षा ली। आगम निष्ठ, तपस्वी, माताजी के रूप में आपकी पहचान बनी। जीव मात्र के कल्याण का सहज सरल हृदय ग्राही भाषा में आपका उपदेश हुआ करता था। आप समाज में एक कुशल वक्ता के रूप में जानी जाती थीं। व्रती जीवन में अधिकांश समय उपवास करके खूब धर्मप्रभावना की।

आर्यिका संयममती माताजी

अपने जीवन में आत्मिक विकास करने का भाव हो तो दृढ़ता और संयम ही सहायक होता है। संयममती माताजी ने भी अपने आत्मोन्नति के लिए संयम का मार्ग अपनाया। आपका पूर्व का नाम मनोबाई था। श्री मोहनलाल जी और श्रीमती कमलाबाई के यहाँ विक्रम संवत् 1979 में बागपत मेरठ में आपका जन्म हुआ था। संसार की असारता और मनुष्य पर्याय की अनमोल उपलब्धि जानकर आपने मगसिर सुदी दशमी संवत 2029 में क्षुल्लिका दीक्षा ली थी। तप साधना में लीन रहकर आपकी भावना आगे बढ़ने की बनी रही और सं0 2031 में आचार्य श्री धर्मसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। सहजता और सरलता से आपकी एक अलग पहचान बनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका शुभमती माताजी

जिनागम के अनुसार जैनेश्वरी दीक्षा ही मोक्षमार्ग में सहायक होती है। ऐसी भावना बनाकर उस मार्ग पर चलने का साहस विरले जीव ही कर पाते हैं ऐसा ही भाव शुभमती माताजी ने बनाया आपका पूर्व नाम विमला था आपका जन्म संवत 2004 में खुरई (सागर म. प्र.) में हुआ। पिता श्री गुलाबचंद जी और माता श्रीमती शांतिबाई ने लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी। धार्मिक रूचि वाली कु. विमला ने पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी से अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया और आर्यिका जिनमती माताजी के सान्निध्य में निरंतर अध्ययनरत रहीं। ज्ञान का फल वैराग्य ऐसी भावना बलवती हुई और विक्रम संवत 2028 में अजमेर में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। शुभमती माताजी आत्मसाधना करती हुई निरंतर अनेक ग्रंथों का अध्ययन मनन करती हुई आचार्य श्री वर्धमान सागरजी के संघ में साधना रत हैं।

आर्यिका रत्नमती माताजी

अवध प्रांत अपनी संस्कृति तीर्थंकर भगवंतों की जन्मस्थली एवं अपनी मीठी वाणी के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा। सीतापुर जिले के महमूदाबाद में सन् 1914 में श्री सुखपाल दास जी के घर एक कन्या का जन्म हुआ, नाम मोहिनीदेवी रखा गया। माता श्रीमती मत्तोदेवी एवं पिता सुखपाल दास जी ने अपने धार्मिक आचरण से अपनी सभी संतानों को धार्मिक संस्कार दिए। लौकिक शिक्षा तीन चार कक्षा तक प्राप्त कर स्कूल जाना छोड़ दिया। इनके छोटे भाई को घर पर उर्दू की शिक्षा देने मौलवी अध्यापक आते थे। अपने छोटे भाई को उर्दू पढ़ते देख स्वयं भी उर्दू पढ़ना सीख गई। मोहिनीदेवी के पिता ने उन्हें भक्तामर स्त्रोत तथा तत्वार्थ सूत्र आदि का अध्ययन कराना प्रारंभ किया साथ ही सबका अर्थ भी बताते चलते उर्दू, हिन्दी, संस्कृत की जानकार मोहिनीदेवी अपने बाल्यकाल से स्वाध्यायी शांत स्वभावी रहीं। माता-पिता ने मोहिनीदेवी का विवाह टिकैतनगर में श्री छोटेलाल जी के साथ कर दिया और अपनी बिटिया को'' पद्मनंदिपंचविंशतिका '' ग्रंथ दहेज में दिया। ससुराल धार्मिक संस्कारों वाला होने से उनकी दैनिक चर्या देवदर्शन से प्रारंभ होती और निरंतर स्वाध्याय आदि चलता रहता, मोहिनीजी गुणमती व बुद्धिमती थीं। उन्होंने इन्हीं गुणों से परिपूर्ण संतानों को जन्म देकर अपनी गृहस्थी की बगिया को खुशहाल किया। इन्हें ऐसी माता होने का गौरव प्राप्त है जिसने आत्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्याण के मार्ग पर अपनी पुत्री का अनुसरण करके अपना जीवन सार्थक किया। आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी की जननी होने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त है। आर्यिका अभयमती माताजी, प्रज्ञा श्रमणी आर्यिका चंदनामती माताजी, पीठाधीश श्री रवीन्द्र कीर्ति जी को मिलाकर मोहनीदेवी ने अपनी सभी संतानों को धार्मिक संस्कार दिए। ऐसी रत्नों की खान मोहनी देवी ने दीक्षा लेकर आर्यिका रत्नमती नाम पाया। उनसे किसी ने एक बार पूछा कि ज्ञानमती माताजी के पास आकर आपको कैसा लगता है तब उनका उत्तर था जैसे अपने द्वारा सींचे गए बगीचे में फूलों और फलों की सुंदरता को देखकर माली प्रसन्न होता है बस वही प्रसन्नता मुझे भी है। इनकी प्रथम संतान मैना जो आगे चलकर क्षुल्लिका वीरमती और फिर आर्यिका ज्ञानमती माताजी बनी, परिवार के सभी सदस्य प्रायः उनके दर्शन करने जाया करते थे। मोहिनीदेवी भी गृहस्थी की सारी जिम्मेदारियां निभाते हुए धर्ममार्ग पर बढ़ने की लालसा मन में बनाती रहीं । इनके पति श्री छोटेलाल जी का समाधि मरण होने के बाद ही वे त्याग मार्ग पर आगे बढ़ीं। ज्ञानमती माताजी को केशलोंच करते देख वैराग्य के भाव हुए और आचार्य श्री से दो प्रतिभा के व्रत मांगे । आचार्य महाराज ने उन्हें पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षा व्रत देकर दो प्रतिमा के व्रत दे दिए और स्वयं सारी विधि बताई। चातुर्मास के समय मोहिनीदेवी परिवार सहित साधुसंघ में जातीं और साधुओं को आहार देकर बहुत प्रसन्न होतीं।

एक बार मोहनीदेवी ज्ञानमती माताजी के पास और अभयमती माताजी के पास काफी समय तक रहीं और दीपावली के बाद एक दिन ज्ञानमती माताजी से बोली माताजी अब मेरी घर जाने की इच्छा नहीं है, मैं दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहती हूँ। माताजी उन्हें हमेशा प्रेरित करती रहती थीं, उन्होंने कहा आपने बहुत अच्छा सोचा '' जबलौं न रोग जरा गहैं, तबलो झटिति निज हित करौं '' इस पंक्ति के अनुसार अभी आपका शरीर साथ दे रहा है। आपको आत्मसाधना में लग जाना चाहिए और मोहिनीदेवी ने आचार्य श्री धर्मसागर जी को दीक्षा के लिए श्रीफल चढ़ा दिया। आचार्य महाराज ने कहा बाई तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है, सोच लो यह जैनी दीक्षा खांडे की धार है। मोहिनीदेवी बोली महाराज जी संसार में जितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं, उनके आगे दीक्षा का क्या कष्ट, अब तो मैंने निश्चित ही कर लिया। मगसिर वदी तीज (15/11/ 1971) को अजमेर में आचार्य धर्मसागर जी महाराज ने तीन आर्यिका दीक्षा दीं और मोहनीदेवी रत्नमती माताजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनीं। ब्रम्हचारिणी फूलाबाई का नाम निर्मलमती माताजी रखा गया और कु. विमला आर्यिका शुभमती माताजी बनीं। रत्नमती माताजी ने दीक्षा के पश्चात् चारों अनुयोगों के ग्रंथों का स्वाध्याय किया और प्रायः महामंत्र का जाप करती थीं। इन्हें छहढाला ग्रंथ से विशेष प्रेम था और शास्त्र स्वाध्याय में बैठकर बड़े मनोयोग से सुनती थीं। वे दर्शन करने वाले श्रद्धालुओं को धर्म का उपदेश देकर देवदर्शन, पूजन, रात्रिभोजन त्याग, स्वाध्याय, मद्यमांस मधु आदि के त्याग की प्रेरणा करती थीं। महीने में कई दिन नीरस भोजन करती थी, अष्टमी चतुर्दशी को उनका अन्न का त्याग रहता था। ऐसी रत्नों की खान वात्सल्यमयी रत्नमती माताजी की आर्यिका ज्ञानमती माताजी के चरण सान्निध्य में 15 जनवरी 1985 को धार्मिक संबोधन प्राप्त करते हुए जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में समाधि हो गई।

आर्यिका निर्मलमती माता जी

साधु संतों का दर्शन एवं उनका धर्मोपदेश जीवन में धर्मोन्मुख होने में प्रबल निमित्त बनता है। ऐसा ही प्रबल निमित्त पाकर निर्मलमती माताजी ने अपने जीवन की उत्कृष्ट उपलब्धि प्राप्त की। आपका जन्म मगसिर वदी 12 संवत् 1980 वैराठ (जयपुर) राजस्थान में हुआ। श्री महादेव सिंघई एवं गोपाली जी ने कन्या का नाम रखा गया मनफूलबाई। तेरह वर्ष की आयु में ही आपका विवाह हो गया और एक वर्ष भी नहीं बीता कि आपको वैधव्य का दुख सहन करना पड़ा। ऐसे दुख के अवसर पर जब जीवन में चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिखता है तब आपके मन में भगवान की भक्ति की किरण दिखाई दी।

आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज, आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज और मुनि श्री अजितसागर जी के दर्शन एवं धर्मोपदेश सुनने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ और मन में दीक्षा लेने के भाव जाग्रत हुए आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद निर्मलमती माता जी ने सुपार्श्वसागर महाराज के संघ में सम्मिलित होकर शाश्वत् सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मेद शिखर जी आदि तीर्थों की वंदना की नाम के अनुसार ही आपकी चर्या हुआ करती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका विमलमती माताजी

संसार की भौतिक चकाचौंध में रहते हुए भी भाग्यशाली होते हैं वे लोग जो सत्संग पाकर आत्म कल्याण का मार्ग चुन लेते हैं। उन्हीं में से एक सौभाग्यशाली महिला थीं फुलीबाई। जिनका जन्म अडंगाबाद (बंगाल) में हुआ था। पिता श्री छगमल जी एवं माताश्री दाखाबाई से आपको धार्मिक संस्कार विरासत में मिले। लौकिक शिक्षा साधारण होते हुए भी आपके भाव धार्मिक कार्यों में अधिक लगते थे। गुरुओं का चरण सानिध्य और सत्संग आपके त्यागमय जीवन में कारण बना। विक्रम संवत् 2026 सुजानगढ़ (राजस्थान) में आचार्य श्री विमल सागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली। कठिन तपश्चरण करते हुए आहार में कई रसों का त्याग कर देती थीं। आचार्य श्री धर्मसागर महाराजजी से आर्यिका दीक्षा लेकर आत्म साधना में रत रहीं।

आर्यिका सिद्धमती माता जी

जब शरीर से ममत्व कम होता है और आत्म कल्याण का भाव जाग्रत होता है, तभी दीक्षा लेने के भाव बनते हैं ऐसी धर्मनिष्ठ थीं सिद्धमती माताजी। आपका पूर्व नाम कल्ली बाई था और कक्षा दूसरी तक शिक्षा हुई। वैशाखसुदी पूर्णिमा संवत् 1971 में जयपुर में आपका जन्म हुआ। श्री केशरमल जी आपके पिता थे और श्रीमती बच्चीबाई आपकी माता थी। भेद विज्ञान और दीक्षा के लिए उच्च लौकिक शिक्षा आवश्यक नहीं है जिस दिन अंतस् में वैराग्य के भाव हों और दृढ़तापूर्वक उस पर चलने की आस्था बन जाए वही पर्याप्त है। इसे चरितार्थ किया कल्लीबाई ने और सं0 2029 में कार्तिक सुदी 12 को जयपुर में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली और सिद्धमती माताजी बन गई। अपने तपस्वी जीवन में दस-दस उपवास करते हुए धर्मसाधना में रत रहीं।

आर्यिका जयमती माता जी

शांत और स्थिर स्वच्छ जल में जिस प्रकार हम अपना प्रतिबिंब देख सकते हैं, उसी प्रकार जीवन में शांति और सुख का कोई मार्ग है तो वह है त्याग का। पूज्य जयमती माताजी ने अपने गृहस्थ जीवन के नाम शांतिबाई को सार्थक करते हुए शांति और सुख का मार्ग अपनाया। शांतिबाई का जन्म संवत 1993 मुजफ्फरनगर यू. पी. में श्री पदमप्रसाद जी के यहाँ हुआ था। आपकी माताजी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
नाम मीनादेवी था। ग्यारहवीं तक लौकिक शिक्षा प्राप्त की और स्त्री पर्याय के उत्कृष्ट पद (आर्यिका) को प्राप्त कर आत्म कल्याण का भाव बनाया। संवत 2029 में जयपुर में आपने आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। निरंतर स्वाध्याय, तप में लीन रहने वाली आर्यिका जयमती माताजी आत्म साधना में रत रहीं।

आर्यिका शिवमती माताजी

आर्यिका शिवमती माताजी बचपन से ही धर्मानुरागी और भगवान बाहुबली की चरणरज का नित्य स्पर्श करने वाली रहीं। '' होनहार बिरवान के होत चीकने पात '' जन्म से ही अतिशय क्षेत्र श्री श्रवणबेलगोला की धरा पर गोम्मेटेश्वर बाहुबली के नित्य दर्शन का लाभ जिसे प्राप्त हो ऐसी भाग्यशाली नारी रत्न थीं कु. शीला। कर्नाटक के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र श्रवणबेलगोला में श्री. जी. वी. धरणेन्द्रैया व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ललितम्मा ने नौ संतानों को जन्म दिया। उसमें तीसरी कन्या कु. शीला हैं जो आज आर्यिका शिवमती माताजी हैं, माता-पिता से बचपन से ही धार्मिक संस्कार मिले और निरंतर दिगबंर जैन साधुओं का सान्निध्य इनके मन में वैराग्य के बीजारोपण में सहायक रहा। सन् 1965 में पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने श्रवणबेलगोला में चातुर्मास किया और श्रवणबेलगोला में उनका प्रवास एक वर्ष तक रहा। शीला को माताजी का चरण सान्निध्य इतना भाया कि वे उनके साथ ही हो लीं। माताजी बड़ी कठिनाई से माता-पिता को मनाकर शीला को अपने साथ ले आईं।

शोलापुर में आचार्य विमलसागर जी महाराज से इन्हें दो वर्ष का ब्रम्हचर्य व्रत दिला दिया । इनकी मातृभाषा कन्नड़ होने से ज्ञानमती माताजी इन्हें कन्नड़ में अध्ययन करातीं थी । आर्यिका जिनमती माताजी और आर्यिका आदिमती माताजी भी इन्हें अध्ययन कराती रहीं। धीरे-धीरे इन्होंने हिन्दी, संस्कृत विषयों में शास्त्रों को पढ़कर धर्मशास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर किए । सन् 1973 में पूज्य ज्ञानमती माताजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए। साधुओं की वैयावृत्ति में विशेष रुचि थी। ब्रम्हचारिणी अवस्था में चौका लगाकर साधुओं को आहार दान दिया करती थी। सन् 1974 में दिल्ली में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का संघ विराजमान था, उस समय पूज्य ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से इन्होंने आचार्य श्री धर्मसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका शिवमती माताजी बन गईं। वर्तमान में आर्यिका शिवमती माताजी निरंतर अपनी संयम साधना करते हुए आत्म कल्याण में रत हैं। अब हिंदी भाषा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय अध्ययन निरंतर चलता रहता है। संस्कृत स्तोत्रों का पाठ भी बहुत मधुर वाणी में करती हैं। आप अपनी प्रवचन शैली से श्रोताओं को सहज सरल भाषा में धर्म मार्ग पर लगाती हैं।

आर्यिका श्रुतमती माताजी

धर्म मार्ग पर चलने से स्वयं के पुरुषार्थ के साथ माता पिता द्वारा मिले संस्कार फलीभूत होते हैं ऐसी ही संस्कारों की पूंजी और पूर्व का पुण्य लेकर सुशीला जी धर्ममार्ग पर आगे बढ़ीं। आपका जन्म कलकत्ता में 14 अगस्त 1947 हुआ था। पिता श्री फागोलाल जी और माता बसन्ती देवी थी। आपके पिता श्री फागोलाल जी ने आत्म कल्याण का मार्ग चुनकर जैनेश्वरी दीक्षा ली जो आचार्य कल्पश्री श्रुतसागर हुए। बचपन से ही धर्म में रुझान होने से सुशीला जी ने ब्रम्हचर्य व्रत ले लिया और आचार्य धर्मसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण कर लिए, निरंतर ज्ञानार्जन करते हुए विशारद एवं शास्त्री की परीक्षा पास की साथ ही पूज्य आदिमती माताजी से संस्कृत, व्याकरण एवं न्याय की शिक्षा प्राप्त की। भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण दिवस के अवसर पर दिल्ली में पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और आपका नाम श्रुतमती माताजी रखा गया। पूज्य श्रुतमती माताजी निरंतर श्रुत आराधना में संलग्न रहतीं और सभी को धर्मध्यान और स्वाध्याय के लिए प्रेरित करती रहती हैं। अनेक स्थानों पर चातुर्मास काल में सामान्यजन को धर्मध्यान में प्रेरित कर खूब धर्मप्रभावना कर रहीं हैं।

आर्यिका धन्यमती माताजी

सरल स्वभावी धन्यमती माताजी परम जिन भक्त नारी रत्न थीं जीवन में लगभग तीस वर्षों तक संघ में रहकर खूब सेवा एवं वैयावृत्ति की । आपका जन्म डेह (नागौर) में हुआ और नाम सोनाबाई था थोड़ी सी लौकिक शिक्षा प्राप्त करते-करते अल्पवय में विवाह नागौर में हुआ। गृहस्थ जीवन सुचारु से व्यतीत हो रहा था। आपको एक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई जीवन साथी का वियोग होने पर मात्र जिन भक्ति ही आपको शरण लगी और आचार्य वीरसागर जी महाराज से सातवीं प्रतिमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के व्रत धारण कर लिए। लंबे समय तक संघ में रहकर आहारदान एवं वैयावृत्ति की। उदयपुर में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और धन्यमती माताजी बन गईं। आपका धन्यमती नाम सार्थक हुआ जब उन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ कि उनकी सल्लेखना-समाधि के अवसर पर लगभग 40 साधुओं का समागम था। केशरिया तीर्थ पर आपने अपने त्यागी जीवन का उद्देश्य समाधिमरण कर अपनी पर्याय का समापन किया। सहज-सरल स्वभाव वाली धन्यमती माताजी ने भक्ति और आत्म साधना के पथ पर चलकर खूब धर्मप्रभावना की।

आर्यिका चेतनमती माताजी

त्याग, तपस्या, तप और साधना शब्दों में कही बातें अच्छी लगती है वे बहुत सौभाग्यशाली होते हैं जो इन्हें जीवन में उतारकर आत्म कल्याण का मार्ग चुन लेते हैं। ऐसा ही साहसपूर्ण कार्य किया चेतनमती माताजी ने आपका जन्म सीकर (राजस्थान) में हुआ और नाम था बरगबाई आपकी माँ दाखाबाई ने बचपन से ही आपको धर्ममय जीवन की शिक्षा दी पूर्व संस्कारों की पूंजी अतीव पुण्य और वर्तमान का सम्यक् पुरुषार्थ फलीभूत हुआ और आर्यिका दीक्षा लेने के भाव बने पूज्य आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से मुजफ्फरनगर में माघसुदी पंचमी को आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आर्यिका चेतनमती माताजी बनकर निरंतर आत्मसाधना में रत रहीं। आपकी समाधि आचार्य श्री वर्धमान सागरजी के भीण्डर चातुर्मास में संघ सान्निध्य में हुई।

आर्यिका विपुलमती माताजी

संसार शरीर एवं भोगों से भयभीत होकर और संसार शरीर और भोगों का वास्तविक रूप जानकर धर्ममार्ग पर अपने आपको लगा लेना बड़े साहस का काम है। बचपन से ही धर्म में रुचि रखने वाली बालिका भागवती बाई ने त्याग मार्ग की ओर बढ़ने का उपक्रम किया आपका विवाह गुडर (जिला शिवपुरी) में श्री गुलाबचंद जी के साथ हुआ आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई माता पिता के दिए हुए संस्कार एवं अतिपुण्यशाली जीव आपके सुपुत्र मुनि दीक्षा लेकर आत्म साधना में रत हुए। भागवती बाई जी के पति का स्वर्गवास हो जाने पर उन्होनें अपना समय धार्मिक कार्यों में लगाना प्रारंभ किया सन् 1962 में गृह त्याग दिया। पश्चात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री धर्मसागरजी से आर्यिका दीक्षा ली और विपुलमती माताजी बनी। माताजी ने संघ में रहकर अपनी त्याग तपस्या से आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

आर्यिका सुरत्नमती माताजी

मध्यप्रदेश का पन्ना जिला जो हीरे की खदानों के लिए प्रसिद्ध हैं। वहाँ की रत्नगर्भा भूमि ने हमें हीरे दिए, वहाँ से चैतन्य रत्न भी मिले जिन्होंने आत्म कल्याण का मार्ग अपनाकर अपना जीवन सफल किया ऐसी ही सुरत्नमती माताजी ने आर्यिका पद को सुशोभित किया। आपका पूर्व का नाम सुधाकुमारी था। मध्यप्रदेश के पन्ना जिले के गुनौर गांव में आपका जन्म हुआ। पिता श्री बेनीप्रसाद जी एंव माता श्रीमती कमला बाई थीं। अपने भाई की दीक्षा देखकर आपकी धार्मिक भावना और बलवती हो गई। घर का त्याग करके पूज्य मुनि श्री दयासागर महाराज के संघ में रहकर आपने दो वर्ष तक शास्त्रों का अध्ययन किया। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर दिल्ली में 18 वर्ष की आयु में आपने ब्रम्हचर्य व्रत ले लिया आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के चरण सान्निध्य में रहते हुए सन् 1976 में बसंत पंचमी के दिन मुजफ्फरनगर में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम सुरत्नमती माताजी हुआ। दीक्षा के बाद सुरत्नमती माताजी सिद्ध क्षेत्रों की और अतिशय क्षेत्रों की वंदना करते हुए चातुर्मास में अनेक स्थानों पर आत्मसाधना के साथ-साथ धर्मप्रभावना करती रहीं।

आर्यिका समयमती माताजी

बहुत भाग्यशाली होते हैं वे लोग जिन्हें धर्मआराधना का अवसर और सपरिवार धर्ममार्ग पर लगकर आत्मकल्याण का अवसर प्राप्त होता है ऐसी ही नारी रत्न थीं समयमती माताजी आपका जन्म सन् 1921 कर्नाटक प्रांत के बेलगांव जिले के अकोला ग्राम में हुआ। आपकी माता बहिशाबाई ने आपको बचपन से ही धार्मिक संस्कार दिए। आपका नाम श्रीमती था । आपका विवाह सदलगा ग्राम के श्री मल्लप्पा जी के साथ हुआ बचपन से ही व गृहस्थ अवस्था में भी निरंतर पूजा आराधना में लीन रहती थीं। आपको चार पुत्र एंव दो पुत्रियों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके दिए हुए संस्कार कुंदकुंद देव की माता मदालसा जी का स्मरण कराते हैं। जैसे माता मदालसा ने अपने पुत्रों को पालने में ही ऐसी लोरी सुनाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि वे आठ वर्ष की उम्र होते ही दीक्षित होकर आत्म कल्याण के मार्ग पर लग गए ऐसे ही आपने अपनी सभी संतानों को धार्मिक संस्कार घुट्टी में दिए। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री महावीर जी ने गृहस्थ जीवन अंगीकार किया आपके द्वितीय पुत्र विद्याधर जी जो वर्तमान में संत शिरोमणी राष्ट्रसंत परमप्रभावक 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज हैं जिन्होंने अब तक लगभग 443 दीक्षाएं देकर चैतन्य कृतियों को तराशा साथ ही विपुल साहित्य के रचयिता जिनकी एक झलक पाने को श्रावक बैचेन रहते हैं ऐसे कोहिनूर की जन्मदात्री होने का सौभाग्य आपको प्राप्त है। आपके एक पुत्र शांतिनाथ जी मुनि श्री समयसागर जी हैं एवं आपके एक पुत्र अनन्तनाथ जी मुनि श्री योगसागर जी हैं। ऐसी महान आत्माओं को जन्म देते वाली श्रीमती जी को जगत जननी (आर्यिका माता जी) बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्षिण भारत का सदलगा ग्राम जिनधर्म प्रभावना का क्षेत्र रहा आचार्य श्री विद्यासागर जी की दीक्षा के बाद निरन्तर इनके माता पिता श्री मल्लप्पा एवं श्रीमती जी सपरिवार उनके दर्शनार्थ जाते थे। संत समागम और अंतस की विशुद्धि ने आपको धर्ममार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी और आपने मुजफ्फरनगर में आचार्य श्री धर्मसागरजी से आर्यिका दीक्षा ली साथ ही आपके पति श्री मल्लप्पा जी ने मुनि दीक्षा ली और मुनि मल्लिसागर जी बनें। आचार्य धर्मसागरजी महाराज ने आपका नाम आर्यिका समयमती माताजी रखा। आर्यिका समयमती माता जी ने अपने तपस्वी जीवन में अपनी ज्ञान, त्याग, तप, आराधना द्वारा आत्मकल्याण के साथ साथ खूब धर्मप्रभावना की।

आर्यिका नियममती माताजी

बचपन से ही धार्मिक संस्कारों वाली नियममती माता जी का जन्म सदलगा (कर्नाटक) में हुआ आपके माता पिता एवं परिवार धार्मिक था। नियममती माताजी के गृहस्थ अवस्था के तीन भाई एक बहिन और माता पिता ने जैनेश्वरी दीक्षा ली। आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से मुजफ्फरनगर में आर्यिका दीक्षा लेकर आपने अपना जीवन सफल किया। आपका नाम नियममती माताजी रखा गया। आप निरंतर ज्ञान, त्याग, तप, आराधना में रत हैं।

आर्यिका प्रवचन माताजी

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, मुनि श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयसागरजी महाराज एवं मुनि श्री योगसागरजी महाराज की गृहस्थ अवस्था की बहिन होने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त था। ऐसी भाग्यशाली कन्या रत्न स्वर्णकुमारी को धार्मिक संस्कार विरासत में मिले। सन् 1955 में रक्षाबंधन के दिन कर्नाटक प्रांत के सदलगा ग्राम (जिला बेलगांव) में जन्म हुआ। आपके पिता श्री मल्लप्पाजी और माता श्रीमती देवी थी। आपकी शिक्षा मराठी व कन्नड़ में सातवीं कक्षा तक हुई। आपके माता पिता ने आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से दीक्षा ली। पिता मल्लप्पाजी 108 मुनि श्री मल्लिसागरजी महाराज और माता श्रीमती देवी ने आर्यिका दीक्षा लेकर समयमती माताजी बन अपना जीवन धन्य किया। बचपन से ही पूजापाठ, भजन कीर्तन में रुचि रही। अपने बड़े भाई 108 श्री विद्यासागर जी महाराज की दीक्षा व उनके प्रवचन सुनकर आपके मन में वैराग्य के भाव बने। सन् 1995 में आचार्य कल्प श्री सुबलसागरजी महाराज के संघ का चातुर्मास सदलगा में हुआ, तब इन्हें प्रतिदिन आहारदान और प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ भावना और दृढ़ होती गई। आचार्य श्री विद्यासागरजी के दर्शन करने राजस्थान आई और सवाई माधोपुर में आजीवन ब्रम्हचर्य व्रत ले लिया। कुछ समय बाद 108 आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के पास अक्षय तृतीया के दिन सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और माघ शुक्ल पंचमी वि0 सवंत 2032 में मुजफ्फरनगर में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा लीं और प्रवचनमती माताजी हुईं। बचपन से ही धार्मिक रुचि वाली प्रवचनमती माताजी का अधिकांश समय धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन और चिंतन मनन में व्यतीत होता रहा।

आर्यिका समाधीमती माताजी

अतीव पुण्य के संचय से और भगवान की भक्ति से जब जीव का पुरुषार्थ जागृत होता है तभी दीक्षा लेने के भाव बनते हैं ऐसी ही भाग्यशाली महिला थीं फीरीबाई। इनका जन्म ज्येष्ठ सुदी 2 संवत् 1960 में रायपुर में हुआ। आपके पिता श्री मेहरचंद जी अग्रवाल थे और मां श्रीमती भागवंती देवी थीं। माता पिता से मिली संस्कारों की पूंजी और स्वंय के सौभाग्य से आपके भाव जैनेश्वरी दीक्षा लेने के हुए। माघ सुदी पंचमी संवत 2023 मुजफ्फरनगर में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और नाम हुआ समाधीमती माता जी। अपने व्रती जीवन में आपने अपने त्याग एवं तपस्या से आत्म कल्याण के साथ खूब धर्मप्रभावना की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के चतुर्थ पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य अजित सागर महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी प्रभावक व्यक्तित्व के धनी श्री अजित सागर जी की दीक्षा पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी से हुई। अजित सागरजी महाराज जहां भी जिन मंदिर में पहुचते वहां के शास्त्र भंडार की सम्हाल करना उनका पहला काम होता था। उनके प्रयासों से अनेक अप्रकाशित ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। उन्होंने जिनागम के अनेक विषयों से संबंधित श्लोकों का संकलन किया था जो बाद में प्रकाशित हुआ। आचार्य अजित सागर जी महाराज तीन वर्ष तक ही आचार्य पद पर रहे। उनसे दीक्षित साधकों ने अपनी चर्या से धर्म की महती प्रभावना की।

आर्यिका अमृतमती माता जी

आपका पूर्व नाम वनिता देवी था। कल्याणपुर (राज.) में आपका जन्म हुआ। वनिता देवी के पिता श्री जेबीलाल ने उन्हें कक्षा 4 तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक वातावरण एवं संस्कारों की पूंजी दी। आपका विवाह श्री खूबचंद्र जी घाटिया के साथ हुआ। गृहस्थ अवस्था से ही व्रत, उपवास और स्वाध्याय में उनकी रुचि थी। आर्यिका चन्द्रमती माता जी की प्रेरणा से आप त्याग मार्ग पर अग्रसर हुइं। आचार्य श्री अजित सागर महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपके पति श्री खूबचंद्र घाटिया ने भी क्षुल्लक दीक्षा ली थी। अमृतमती माता जी की व्रत, उपवास और प्रथमानुयोग के स्वाध्याय में विशेष रुचि थी। इनके प्रवचन प्रथमानुयोग के कथानकों को लेकर शिक्षा प्रद हुआ करते थे। 24 फरवरी 2017 को मांगीतुंगी में आचार्य श्री अनेकान्त सागरजी महाराज के सान्निध्य में आपकी समाधि हुई।

आर्यिका मनोमती माता जी

आपका जन्म बधाल (राज.) में हुआ। और जन्म नाम था सूरजदेवी। आपके पिता श्री जीवनराम जी एवं माता श्रीमती कपूरी देवी ने आपका विवाह श्री धर्मचंद जी गंगवाल के साथ सम्पन्न कराया। गृहस्थ जीवन में भगवान की भक्ति करने वाली सूरज देवी पति के देहान्त के बाद त्याग मार्ग पर अग्रसर हुई। विदुषी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका विशुद्धमती माताजी की प्रेरणा से जौबनेर (राज.) में उनसे ही आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली। आचार्य श्री अजित सागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर आप मनोमती माताजी हुईं।

आर्यिका अनन्तमती माताजी

आपका जन्म फतेहपुर शेखावाटी में हुआ। आपके गृहस्थ जीवन का प्रारंभ सीकर में हुआ। निरंतर धर्म आराधना और जिनेन्द्र भक्ति पूर्वक जीवन जीने वाली गृहणी रहीं और सीकर (राज.) में ही आचार्य श्री धर्मसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली। 1988 में भीण्डर में आचार्य श्री अजित सागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई और आप अनन्तमती माता जी बनीं। त्यागी जीवन में शुद्धि की ओर आपका विशेष ध्यान रहता था। एवं स्वाध्याय में रत रहती थीं। आचार्य श्री वर्धमान सागरजी महाराज के निर्देशन में भीण्डर (राज.) में समाधि हुई।

आर्यिका दक्षमती माताजी

आर्यिका दक्षमती माता जी का पूर्व नाम विद्या था। आपके पिता श्री रतनलाल जी ने अपनी बेटी को लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक संस्कारों की सौगात दी। विवाह के 1 वर्ष के बाद ही वैराग्य के भाव से आप गृहस्थ जीवन से मुक्त हो गईं। विक्रम संवत् 1988 में भीण्डर (राज.) में आचार्य श्री अजित सागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। वर्तमान में आप आर्यिका अनन्तमती माता जी और चन्द्रमती माता जी के साथ धर्म ध्यान में रत है। आप शास्त्र स्वाध्याय के साथ-साथ जन जन को धर्ममार्ग पर लगने का उपदेश देकर कल्याण के मार्ग पर लगाती हैं।

आर्यिका सौम्यमती माताजी

आपका पूर्व नाम मोहनबाई था। आपका जन्म उदयपुर में हुआ। माता - पिता से मिली संस्कारों की पूंजी के साथ साथ आर्यिका शीतलमती माता की प्रेरणा से आप की पुण्य भावना फलित हुई। और आप धर्म मार्ग पर अग्रसर हुई। आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज से विक्रम संवत् 1988 में भीण्डर में आर्यिका दीक्षा लेकर अपने जीवन को सार्थक किया। सामायिक और व्रत उपवास में आपकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष रुचि रही विक्रम संवत् 2005 में पारसोला (राज.) से आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज के सान्निध्य में समाधि हुई।

आर्यिका सौरभमती माताजी

आपका पूर्व नाम बसन्ती बाई था। जाड़ौल फलासिया में आपका जन्म हुआ। 5वीं तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ माता पिता ने धार्मिक संस्कारों से बसन्तीबाई का जीवन सँवारा। कम उम्र में ही वैधव्य का दुःख झेलने के समय चारों ओर से दुखित मन को अंधेरा ही दिखता था। उस समय धर्म ही उनके जीवन का सहारा बना और आर्यिका दयामती जी की प्रेरणा से विक्रम संवत् 1988 में आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। वर्तमान में मुनि श्री पुण्यसागरजी के संघ में रहकर आप धर्म, ध्यान एवं अपने तप और त्याग से धर्म प्रभावना कर रही हैं।

आर्यिका चैत्यमती माताजी

आपका पूर्व नाम कमलाबाई था। इनका जन्म सराड़ी (राज.) में श्री कारूलाल जी और हमेरी बाई के घर हुआ। लौकिक शिक्षा 5वीं तक हुई। धार्मिक रूचि रखने वाली कमलाबाई को मुनि श्री वीरसागर (परसाद वाले) महाराज से प्रेरणा मिली और वे धर्म मार्ग पर अग्रसर होती गईं। विक्रम संवत् 1988 में भीण्डर में आचार्य अजितसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर उनकी अंतिम शिष्या होने का गौरव प्राप्त किया। वर्तमान में आप आचार्य श्री वर्धमान सागर जी के संघ में रहकर साधनारत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के शिष्य

आचार्य कल्प श्रुतसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

आचार्यकल्प श्री श्रुत सागरजी आचार्य श्री वीर सागरजी से दीक्षित अंतिम शिष्य थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी साधक थे। संघ के अनेक साधकों के शिक्षा गुरू रहे। वे गृहस्थ श्रावकों को त्याग की प्रेरणा देते थे। श्रावक के जीवन में अशुभ का त्याग हो सके और उसका आचरण प्रमाणिक बने ऐसा उनका प्रयास रहता था। अत्यन्त विनोदी स्वभाव वाले आचार्य कल्प श्रुतसागर जी निर्लिप्त और निस्पृही संत थे उन्होंने अपने त्यागी जीवन में एक मुनि एवं तीन आर्यिका दीक्षाएं दीं।

आर्यिका सरलमती माताजी

बुंदेलखंड की पावन धरा पर श्री चुन्नीलाल जी एवं शगुनबाई जी के घर टीकमगढ़ में विक्रम संवत् 1980 में एक बिटिया का जन्म हुआ, उसका नाम सुमित्राबाई रखा गया। सामान्य लौकिक शिक्षा होने पर सुमित्राबाई ने अपना गृहस्थ जीवन धर्मपूर्वक व्यतीत किया। वैराग्य के भाव फलीभूत हुए एवं विक्रम संवत् 2026 में उदयपुर में आचार्य कल्प श्रुतसागरजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। पूज्य माताजी ने आत्मकल्याण के मार्ग पर चलते हुए अपनी मानव पर्याय को सार्थक बनाया।

आर्यिका दयामती माता जी

दयामाती माताजी का स्वभाव अपने नाम के अनुसार ही परहित परोपकार में लगे रहने का था। आपका जन्म सिंघई गोरीलाल जी और श्रीमती महारानी के घर सागर में हुआ नाम नन्हींबाई रखा गया । आपका विवाह सिंघई छोटेलाल जी के साथ सम्पन्न हुआ। 25 वर्ष गृहस्थाश्रम में रहकर वैधव्य अवस्था प्राप्त होने पर बचपन से ही धर्म ध्यान में लीन रहने वाली नन्हींबाई का मन घर में नहीं लगा। विक्रम संवत् 2018 में आचार्य श्री धर्म सागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत लिए और टोड़ा रायसिंग में आचार्य कल्प श्रुतसागर महाराज जी से सातवीं प्रतिमा ग्रहण की। वैराग्य की भावना निरंतर बलवती होती गई और संवत् 2024

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आपने किशनगढ़ में श्रुतसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण करी। दयामती माताजी ने अपना व्रती जीवन धर्मध्यान पूर्वक अत्यंत सरल सहज रूप से व्यतीत करते हुए खूब धर्मप्रभावना की।

आर्यिका शीतलमती जी

यथानाम तथा गुणवाली आर्यिका शीतलमती माता जी का जीवन सत्संग के प्रभाव से त्याग के मार्ग की ओर अग्रसर हुआ। अत्यंत शांत स्वभाव वाली शीतलमती जी का जन्म विक्रम संवत् 1995 में गांमड़ी (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता श्री निहालचंद जी और माता जनकूबाई थी। आपका बचपन का नाम गैंदीबाई था। सावला निवासी श्री गोर्धनलाल जी से आपका विवाह हुआ, पांच महीने बाद ही आप विधवा हो गईं। इस दुःख की घड़ी में भी आप अपना अधिकांश समय स्वाध्याय में ही बितातीं। साबला में पूज्य ज्ञानमती माताजी का आगमन हुआ। उनकी प्रेरणा से आपकी धर्म भावना बलवती हुई और आप माताजी के साथ चली गईं। प्रतापगढ़ में विक्रम संवत् 2025 में आपने आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत लिए और संघ में रहकर ही धर्म ध्यान करने लगीं। आपने समस्त तीर्थों की यात्रा करके मदनगंज (किशनगढ़) में संवत् 2029 में आचार्य कल्प श्रुतसागर जी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली और तीन वर्ष पश्चात् आचार्य कल्प श्रुतसागर जी महाराज से ही आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद शीतलमती जी ने श्री अजितसागर जी महाराज से धार्मिक शिक्षा प्रारंभ की। शीतलमती माताजी यथाशक्ति व्रत उपवास करती हुई आत्म कल्याण के मार्ग पर लगीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के पंचम पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित आर्यिकायें

वात्सल्य वारिधि आचार्य वर्धमानर सागरजी महाराज की मुनि दीक्षा आचार्य श्री धर्म सागर जी से हुई। वर्धमान सागरजी उदारता करूणा एवं वात्सल्य के धनी संत है। इनके व्यक्तित्व में सभी पूवाचार्यों के जीवन की झलक मिलती है। श्री गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव में लगातार तीसरी बार आचार्य श्री वर्धमान सागरजी पावन सान्निध्य प्रदान कर रहे हैं। आचार्य श्री द्वारा दीक्षित साधक मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त है।

आर्यिका वैराग्यमती माताजी

आपको आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज की प्रथम शिष्या होने का गौरव प्रास था। आपका पूर्व नाम सुशीला देवी था। कामी (महाराष्ट्र.) में आपका जन्म हुआ। माता-पिता ने लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा देकर आपके गृहस्थ जीवन का शुभारंभ किया। जिन आराधना करते हुये त्याग की भावना बलवती हुई और आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आपने सात प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। पारसोला (राज.) में 24 सितम्बर 1990 कार्तिक कृष्ण पंचमी को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। आर्यिका वैराग्यमती माता जी ने वैराग्य के पथ पर निरंतर ध्यान और अध्ययन में रत रहते हुये जयपुर (राज.) में 78 वर्ष की उम्र में 25 जुलाई 2013 को अपनी वर्तमान पर्याय का समापन किया।

आर्यिका वन्दितमती माताजी

कस्तूरी देवी का जन्म जाम्बुड़ा (सलम्बूर) राजस्थान में श्रीमान रतनलाल जी एंव श्रीमती पानूबाई जी के घर हुआ। कस्तूरी देवी जी ने धर्ममय गृहस्थ जीवन बिताया। और आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से सात प्रतिमा के व्रत लिए। भीण्डर (राज.) में 15 फरवरी 1997 को माघ शुक्ल नवमी को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। त्यागमयी जीवन में वन्दितमती माता जी स्वाध्याय अध्ययन में रत रहीं। वन्दितमती माता जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की लगभग 72 वर्ष की उम्र में 15 नवम्बर 2005 को कार्तिक शुक्ल तेरस को श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज के सान्निध्य में जीवन की परम उपलब्धि सल्लेखना समाधि हुई।

आर्यिका वत्सलमती माताजी

श्री मोतीलाल जी एवं श्रीमती सज्जनबाई जी के घर 1 नवम्बर 1953 को सलम्बूर (राज.) में एक कन्या का जन्म हुआ। उनका नाम विमलाबाई जी रखा गया। 9वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा प्राप्त की एवं श्री फतेहलाल जी के साथ आपका विवाह हुआ। धार्मिक भावना और आर्यिका श्री विद्यामती माता जी की प्रेरणा से श्रीमती विमलाबाई जी त्याग मार्ग पर आगे बढ़ीं। आचार्य श्री 108 धर्मसागर जी महाराज से किशनगढ़ में दो प्रतिमा के व्रत लिए। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी से सन् 1991 में धरियावद में आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। त्याग मार्ग पर बढ़ते हुये नारी पर्याय के उत्कृष्ट पद की आर्यिका दीक्षा ली। 15 फरवरी 1997 में माघ सुदी नवमी भीण्डर (राज.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई उनके ही संघ में रहकर आर्यिका वत्सलमती माता जी साधनारत है।

आर्यिका वर्द्धितमती माताजी

श्री पूनमचंद जी शाह और श्रीमती प्रमिला देवी की पुत्री भावना जी का जन्म 1 दिसम्बर 1969 को गुजरात में हुआ। बचपन से ही धार्मिक रूचि रखने वाली भावना निरंतर धर्म ग्रंथों का अध्ययन एवं स्वाध्याय करती थीं। आपकी लौकिक शिक्षा बी.एस.सी (सांख्यिकी) में हुई। हिंदी साहित्य में भी आपकी रूचि थीं। हिंदी साहित्य में कोविद परीक्षा उत्तीर्ण की। परन्तु जब उनसे पूछा जाता है कि आगे क्या करना है? तो उनका यही उत्तर होता है कि जो मेरी बड़ी बहन करेगी वही मैं करूंगी। बड़ी बहन पंकज आर्यिका दीक्षा लेकर प्रशान्तमती माता जी हुई तो भावना बहिन भी इसी मार्ग पर चल पड़ीं और क्रमशः ब्रह्मचर्यव्रत, दूसरी प्रतिमा के व्रत और तीसरी प्रतिमा के व्रत लेने के बाद भीण्डर में माघ शुक्ला नवमी 15 फरवरी 1997 को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी के कर-कमलों से आर्यिका के व्रत ग्रहण कर आर्यिका वर्द्धितमती माताजी हुई। आर्यिका दीक्षा के बाद अध्ययन-अध्यापन, लेखन-प्रवचन की गतिविधियों ने आपको निरंतर व्यस्त रखा। 'जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म प्रवेशिका' के तीन भाग लिखे तथा आलाप पद्धति पर प्रश्नोत्तर टीका लिखी। ये चारों पुस्तकें प्रकाशित होकर लोकप्रिय हुईं। स्वयं का भी अध्ययन चलता रहा- जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार, समयसार, न्यायदीपिका, परीक्षामुख आदि ग्रंथों का अध्ययन किया । प्रवचन की अपनी सरस शैली और अध्यापन की मोहक कला से आप बच्चों और महिलाओं में अतीव लोकप्रिय हुईं। कठिन से कठिन विषय को सहजता से समझाने की अद्भुत कला उनमें थी। आर्यिका वर्द्धितमतीजी का चार्तुमास 2003 का वर्षायोग खूंता गांव-धरियावद में सम्पन्न हो रहा था। इसी वर्षायोग में 23 सितम्बर 2003 में खूंता गांव -धरियावद (राज.) में आपकी समाधि हुई।

आर्यिका विलोकमती माताजी

सलम्बूर (राज.) में 31 जनवरी 1961 माघ सुदी 15 को केशरबाई जी का जन्म हुआ। आपके पिता श्री ओंकार लाल जी एवं माता श्रीमती मनीबाई जी ने अपनी कन्या को 5वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी दिये। केशरबाई जी का विवाह श्री अशोक कुमार जी के साथ सम्पन्न हुआ। आर्यिका सुवैभवमती माता जी की प्रेरणा से 1983 में मुनि श्री दयासागर जी महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। और आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से दो प्रतिमा के व्रत लिये। धर्म आराधना करते हुये 15 फरवरी 1997 को माघ सुदी नवमी को भीण्डर (राज.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी से ही आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में आचार्य श्री के संघ में ही धर्म आराधना करते हुये त्याग तपस्या में रत हैं।

आर्यिका ऋद्धिमती माताजी

इनका जन्म विक्रम संवत 1988 में टोकर (राज.) में हुआ। आपका पूर्व नाम मेवा देवी था। आपके पिता श्री लाभचन्द जी जैन और माता श्रीमती चम्पाबाई जी थी। आपकी शिक्षा तीसरी कक्षा तक हुई। और आपका विवाह नाथूलाल जी के साथ सम्पन्न हुआ। आपके माता-पिता ने अपनी कन्या को धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा दिलवाई। आपका गृहस्थ जीवन धर्ममय रहा। धार्मिक भावना के साथ साथ वैराग्य की भावना अंतस में बढ़ी और आपने त्याग मार्ग अपनाया। त्याग मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा आचार्य श्री अभिनन्दन सागर जी महाराज से मिली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उनसे ही आपने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से 12 अगस्त 2005 सप्तमी को श्रवणबेलगोला क्षेत्र में आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। ऋद्धिमती माता जी की रुचि स्वाध्याय अध्ययन और ध्यान में विशेष रूप से थी।

आर्यिका हीरकमती माताजी

यथा नाम तथा गुण वाली हीरकमती माता जी ने अपनी पर्याय को सार्थक करने वाला आर्यिका पद प्राप्त किया। आपका जन्म 1932 में गाँव भोसे (जिला-सांगली) में हुआ। आपका पूर्व नाम रूपाबाई जी रखा गया। पिता श्री चन्दप्पा साजनेजी और माता श्रीमती पद्मावती जी ने अपनी बेटी को 5वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा एवं संस्कार दिये। रूपाबाई जी का विवाह श्री देवप्पा चौगले जी के साथ सम्पन्न हुआ। अंतस की वैराग्य भावना फलीभूत हुई। और आर्यिका सक्षममती माता जी की प्रेरणा से आपने आचार्य श्री 108 श्री श्रुतसागर जी महाराज (दक्षिण) से ब्रह्मचर्य व्रत लिया। आचार्य 108 श्री विद्यासागर महाराज जी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से 10 मार्च 2006 फाल्गुन सुदी ग्यारस श्रवणबेलगोला में श्रीमती रूपाबाई जी ने क्षुल्लिका दीक्षा ली। लगभग 1 वर्ष पश्चात् 17 मार्च 2007 कार्तिक सुदी सप्तमी को श्रवणबेलगोला में ही आचार्य श्री 108 वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। और उनके संघ में रहकर ही तपस्यारत हैं।

आर्यिका ज्योतिमती माताजी

श्री मांगीलाल जी एवं श्रीमती नाथीबाई जी के घर 1943 में मालपुरा (राज.) में जन्मी कन्या का नाम मनोरमाबाई रखा गया। माता पिता ने अपनी कन्या को 5वीं तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धर्म संस्कारों से भी समृद्ध किया। श्री चिरंजी लाल जी के साथ आपका विवाह हुआ। जीवन में पुण्ययोग से वह शुभ घड़ी आई जब श्रीमती मनोरमाबाई जी ने आर्यिका श्री सुवैभवमती माता जी की प्रेरणा से 1987 में मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत लिया। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर त्याग मार्ग पर अग्रसर हुईं। 17 मार्च 2007 कार्तिक सुदी सप्तमी को सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर उन्हीं के संघ में आत्मकल्याण के मार्ग पर साधनारत हैं।

आर्यिका क्षीरमती माताजी

आपका जन्म सनावद (म.प्र.) में हुआ। पिता श्री जिनेन्द्र कुमार जी एवं माता श्रीमती बेबीबाई जी की कन्या का नाम रखा गया अर्चना। ब्रा.ब्र. अर्चना दीदी ने अपनी लौकिक शिक्षा बी.ए तक करके अध्यापन का कार्य किया। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। व्रती जीवन में अग्रसर होते हुये 9 अक्टूबर 2008 अश्विन शुक्ला दशमी को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। क्षीरमती माता जी त्याग तपस्या करते हुये धर्म मार्ग पर आगे बढ़ती रहीं। श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जी में लगभग 42 वर्ष की उम्र में आपकी समाधि 06 नवम्बर 2008 का आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

आर्यिका चन्द्रप्रभमती माताजी

भीण्डर (राज.) में 4 अक्टूबर 1985 आषाढ़वदी पंचमी को श्री सौभाग्यमल जी जैन एवं श्रीमती यशोदा देवी के घर एक कन्या का जन्म हुआ। नाम रखा गया सोनाली जी। बी.ए. तक लौकिक शिक्षा आपने प्राप्त की। ब्रा.ब्र. सोनाली जी के वैराग्य मार्ग पर अग्रसर होने में सुवैभवमती माता जी की प्रेरणा रही। आपने 2005 में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत लिया। और 17 नवम्बर 2007 कार्तिक सुदी सप्तमी को श्रवणबेलगोला में आचार्य श्री से ही क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर जिज्ञासामती नाम पाया। निरंतर अध्ययन, चिंतन मनन में रत जिज्ञासामती जी ने 18 नवम्बर 2010 कार्तिक सुदी 12 को कोलकाता में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और चन्द्रप्रभमती माता जी बनीं। आचार्य श्री के संघ में ही अध्यनरत रहकर आत्मकल्याण के साथ-साथ अपने उपदेश द्वारा सामान्यजन को भी धर्म मार्ग पर लगने की प्रेरणा देती हैं।

आर्यिका दिव्यमती माताजी

श्री गणेशमल जी पहाड़िया एवं श्रीमती नेमाबाई जी के घर लाडूनं (राज.) में सन् 1934 में कन्या का जन्म हुआ। और उनका नाम पानाबाई जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखा गया। माता पिता ने अपनी कन्या को धार्मिक वातावरण में बड़ा किया। और उनका विवाह श्री बाबूलाल जी सेठी से सम्पन्न किया। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज की प्रेरणा से पानाबाई जी ने उन से ही ब्रह्मचर्य व्रत लेकर 13 जुलाई 2008 आसाढ़ सुदी ग्यारस को श्री सम्मेद शिखर जी में क्षुल्लिका दीक्षा ली। उनका नाम क्षुल्लिका तीर्थमती माता जी रखा गया। त्याग मार्ग पर रत क्षुल्लिका माता जी ने 18 नवम्बर 2010 कार्तिक सुदी 12 को कोलकाता में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी से दीक्षा ली और आर्यिका दिव्यमती माता जी हुईं। आचार्य श्री के संघ में साधनारत माता जी की विशेष रुचि, ध्यान एवं तपस्या में है। अपनी सल्लेखना की साधना हेतु निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

आर्यिका चर्यामती माताजी

प्राकृतिक सौन्दर्य एवं आचार्यों की जन्म भूमि के रूप में प्रसिद्ध कर्नाटक प्रांत में जन्म लेने वाली सुशीलाबाई जी ब्रा.ब्र. के रूप में धर्म मार्ग पर लगीं। आपका जन्म बस्तवाड़ (कर्नाटक) में हुआ। आपके पिता श्री तवनप्पा जी एवं माता रत्नावली जी थीं। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज की प्रेरणा से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। 28 सितंबर 2009 विजयादशमी के दिन ही चम्पापुर जी में आचार्य श्री से ही क्षुल्लिका दीक्षा ली। और क्षुल्लिका जिष्णुमती माता जी कहलाईं। 18 नवम्बर 2010 कार्तिक सुदी 12 को कोलकाता में 108 आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर चर्यामती माता जी बनीं। आचार्य श्री के संघ में ही आप आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर हैं।

आर्यिका दिव्यांशुमती माताजी

माता-पिता के संस्कार एवं चर्या संतान पर बहुत प्रभाव डालती है। श्री माणकचन्द्र जी जैन और श्रीमती रूपारीबाई जैन के घर बांसवाड़ा (राज.) में 5 मई 1947 वैशाख सुदी 15 को एक कन्या का जन्म हुआ। उनका नाम शकुन्तला रखा गया। शकुन्तला जी की लौकिक शिक्षा बी.ए. तक हुईं। और श्री जीतमल जी शाह के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। इनके माता-पिता दोनों ने आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज से दीक्षा ली। और माणक चन्द्र जी मुनि 108 श्री आनन्दसागर जी बने। और माता रूपारीबाई आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी हुईं। श्रीमती शकुन्तला जी ने विदुषी आर्यिका 105 श्री विशुद्धमती माताजी से दो प्रतिमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के व्रत ग्रहण करे। तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज से पाँच प्रतिमा के व्रत लिये। गणनी आर्यिका रत्न श्री सुपार्श्वमती माताजी से सात प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। 18 नवम्बर 2010 कार्तिक सुदी 12 को कोलकाता में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। ध्यान व अध्ययन में विशेष रुचि रखने वाली दिव्यांशुमती माता जी आचार्य श्री के संघ मे रहकर साधनारत है।

आर्यिका पूर्वीमती माताजी

पारसोला (राज.) में 1948 में सम्पतबाई का जन्म हुआ। इनके पिता श्री मीठालाल जी बगेरिया एवं माता श्रीमती सोहनबाई जी थी। 6वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा प्राप्त करी और इनका विवाह श्री सूरजमल जी सरिया के साथ सम्पन्न हुआ। धर्ममय गृहस्थ जीवन के साथ-साथ सम्पतबाई जी के वैराग्य के भाव बनने लगे। 18 नवम्बर 2010 कार्तिक सुदी 12 को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से कोलकाता में आपकी क्षुल्लिका दीक्षा हुई। और दिप्तीमती माता जी कहलाईं। त्याग मार्ग पर अग्रसर होते हुये माघ कृष्ण पंचमी 1 फरवरी 2013 को टीकमगढ़ (म.प्र.) में वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। संघ में रहकर त्यागमयी चर्या एंव तपस्या से खूब धर्म प्रभावना कर रही हैं।

आर्यिका पूर्णिमामती माताजी

ब्रा.ब्र. अंजना जैन का जन्म कार्तिक कृष्ण एकम् 1978 में निवाई (राज.) में हुआ। आपके पिता श्री पदमचंद जैन गिदौड़ी और माता श्रीमती प्रेम देवी जी ने हायर सेकेण्ड्री तक लौकिक शिक्षा दिलवाई। माता-पिता से धार्मिक संस्कारों की सौगात का ही फल है कि आप त्याग मार्ग पर आगे बढ़ीं। आर्यिका श्री नंगमती माता जी से अंजना जी ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया। और माघ कृष्ण पंचमी 1 फरवरी 2013 को टीकमगढ़ में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में आचार्य श्री के संघ में रहकर आप निरंतर धर्म, ध्यान और तपस्या में रत हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका मुदितमती माताजी

सागर देवी का जन्म 1938 में पारसोला (राज.)में हुआ। पिता श्री रतनपाल जी एवं माता सज्जनबाई थीं। धर्ममय वातावरण में पली सागर देवी का विवाह श्री रतनलाल जी के साथ सम्पन्न हुआ। वैराग्य की भावना फलीभूत हुई और आप आठ प्रतिमा लेकर धर्म आराधना में रत हुईं। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से 20 फरवरी 2015 निमाज, जोधपुर (राज.) में आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। आपकी विशेष रुचि ध्यान और अध्ययन में है।

आर्यिका विचक्षणमती माताजी

सीकर (राज.) में श्री जिनेन्द्र कुमार जी पहाड़िया एवं श्रीमती भगवानी देवी के घर 29 नवम्बर 1963 को कन्या रत्न का जन्म हुआ। आपका नाम रखा गया चंद्रकांता। माता-पिता ने मैट्रिक तक शिक्षा दिलाकर चंद्रकांता जी का विवाह श्री सुरेशचंद जी के साथ सम्पन्न करा दिया। जो बाद में क्षुल्लक श्री विशाल सागरजी महाराज बने। आपकी शिक्षा गुरू विदुषी आर्यिका श्री विशुद्धमती माता जी रहीं। आर्यिका श्री आदिमती माता जी से आपने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अजमेर में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से सात प्रतिमा के व्रत लेकर धर्म आराधना करती हुई रहने लगीं। किशनगढ़ (राज.) में 29 अप्रैल 2015 वैशाख शुक्ला ग्यारस को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से ही आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। विचक्षणमती माता जी संघ में रहते हुये अध्ययन, ध्यान एवं तपस्या करती हुई मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हैं।

आर्यिका अमूर्तमती माताजी

आपका पूर्व नाम प्रमिलाजी है। आपके पिता श्री कान्तिलाल जी और माता श्रीमती इच्छाबेन ने आपको बचपन से ही धार्मिक संस्कार दिये। आपका विवाह पूनमचंद जी शाह के साथ सम्पन्न हुआ। माता-पिता ने प्रमिला बहन को दहेज में पीतल का कमंडलु दिया था। प्रमिला बहन ने अपनी संतानों को धार्मिक संस्कार घुट्टी में दिये थे। इनकी दो पुत्रियाँ आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हुईं। कुमारी पंकज जो आर्यिका प्रशान्तमती माता जी हैं और कुमारी भावना आर्यिका वर्द्धिमती माता जी थीं। आपका गृहस्थ जीवन प्रायः साधु संघों में आहार दान देते हुये व्यतीत हुआ। आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज से भावनगर में आपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्य व्रत लिया। श्रवणबेलगोला में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आप आर्यिका विशुद्धमती माता जी के संघ में उनकी समाधि के समय तक निरंतर व्रतियों की सेवा व चौका लगाने में सदैव तत्पर रहती थीं। कुन्थलगिरि क्षेत्र में सन् 2010 में आर्यिका प्रशान्तमती माता जी से क्षुल्लिका दीक्षा लेकर विशदमती माता जी कहलाईं। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से किशनगढ़ में आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। अमूर्तमती माता जी आर्यिका प्रशान्तमती माता जी के संघ में रहकर साधनारत हैं।

आर्यिका समर्पितमती माताजी

आपका पूर्व नाम भारती है। कूण (राज.) में 23 मार्च 1962 को आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्री भगवानलाल जी और माता श्रीमती पानीदेवी जी ने आपको धार्मिक संस्कारों के साथ-साथ एम.ए तक लौकिक शिक्षा दिलाई। ब्रह्मचारिणी भारती बहन अधिकांश समय विदुषी आर्यिका विशुद्धमती माता जी के पास रहीं। और उनसे ही आपने सात प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। आर्यिका विशुद्धमती माता जी के संघ में रहकर निरंतर त्यागीव्रतियों की सेवा एवं आहारदान में आपकी विशेष रुचि रहती थी। आर्यिका विशुद्धमती माता जी की समाधि के समय लगातार कई वर्षों तक आप उनके साथ थीं। आपकी धार्मिक शिक्षा भी उन्ही से हुई। किशनगढ़ (राज.) में 29 अप्रैल 2015 को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। वर्तमान में समर्पितमती माता जी विदुषी आर्यिका प्रशान्तमती माता जी के संघ में रहकर धर्म आराधना करती हुई आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं।

आर्यिका निर्मुक्तमती माताजी

श्री रतनलाल जी एवं श्रीमती रतनी देवी जी के घर चौरू (राज.) में 15 अगस्त 1958 में आपका जन्म हुआ। और आपका पूर्व नाम गुणमाला था। माता-पिता ने 11वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी। और आपका विवाह श्री सुखानंद जी पाटनी के साथ सम्पन्न हुआ। पूर्व का पुण्य और वर्तमान का सम्यक् पुरुषार्थ फलीभूत हुआ। धर्ममय जीवन जीने वाली श्रीमती गुणमाला जी ने 30 अप्रैल 2015 वैशाख शुक्ल ग्यारस को किशनगढ़ (राज.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। संघ में निरंतर शास्त्र, स्वाध्याय अध्ययन एवं चितन मनन करती हुई साधनारत हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका विनम्रमती माताजी

शिरटी (महाराष्ट्र) में 1966 में आपका जन्म हुआ और नाम रख गया जयश्री। जयश्री जी के पिता श्रीमान अप्पासौ जैन एवं माता श्रीमती पूलाबाई ने आपको कक्षा चौथी तक शिक्षा दिलवाई और आपका विवाह श्री दिलीप जी के साथ सम्पन्न हुआ। त्याग भावना के चलते आपने मुनि श्री उदारसागर जी से पाँच प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। धर्म मार्ग पर आगे बढ़ते हुये 27 नवम्बर 2015 मार्गशीर्ष कृष्ण दूज निवाई (राज.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपकी आर्यिका दीक्षा हुई और आपका नाम विनम्रमती माता जी हुआ। संघ में ही रहते हुये आप निरंतर धर्म आराधना करते हुये तपस्यारत हैं।

आर्यिका श्रेयमती माताजी

श्री भंवरलाल जी एवं श्रीमती रुक्मनी देवी जी के घर नवाणिया (राज.) में 15 अगस्त 1957 को जन्मी कन्या का नाम पुष्पा रख गया। माता-पिता ने धार्मिक संस्कारों के साथ 10वीं कक्षा तक लौकिक शिक्षा दिलाकर पुष्पा जी का विवाह श्री महावीर प्रसाद जी भोपावत के साथ सम्पन्न कर दिया जो बाद में मुनि श्री श्रेयससागर जी बने। पुष्पा जी ने धर्म मार्ग पर आगे बढ़ते हुये मुनि श्री पुण्यसागर जी से सात प्रतिमा के व्रत ले लिये। निंरतर धर्म मार्ग पर आगे बढ़ते हुये 14 अक्टूबर 2016 आषोज शुक्ल तेरस को सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट जी (म.प्र.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। संघ में रहते हुये श्रेयमती माता जी निरंतर ध्यान, अध्ययन करती हुई तपस्यारत हैं।

आर्यिका चैतन्यमती माताजी

बड़वाह (म.प्र.) में 4 जनवरी 1944 में श्री कँवरलाल जी जैन एवं श्रीमती माणिकबाई जी के घर कन्या का जन्म हुआ। उनका नाम विजय श्री रखा गया। आपने हायर सेकेण्डरी तक शिक्षा प्राप्त की। विजय श्री जी का विवाह श्री विमलचंद जी जैन के साथ सम्पन्न हुआ। पाँच प्रतिमा के व्रत लेकर धर्म मार्ग पर बढ़ते हुये 14 अक्टूबर 2016 आषोज शुक्ल तेरस को सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट जी (म.प्र.) में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ली। और चैतन्यमती माता जी बनीं। वर्तमान में संघ में रहकर अपनी चर्या से खूब धर्म प्रभावना कर रही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका दर्शनामती माताजी

श्री नेमिचंद जी और श्रीमती इंदुमती जी के घर 22 नवम्बर 1962 गुजरी, धार (म.प्र.) में ममता देवी का जन्म हुआ। ममता देवी को उनके माता-पिता ने बी.ए तक लौकिक शिक्षा दिलाई। इनका विवाह श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन के साथ हुआ। जो बाद में मुनि श्री दर्शितसागर जी बने। ममता जी ने आर्यिका पूर्णमती माताजी से दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। व्रतीचर्या के साथ -साथ व्रत नियम में आगे बढ़ने की भावना बलवती हुई। आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से 16 अक्टूबर 2016 को आषोज शुक्ल 13 को सिद्धक्षेत्र श्री सिद्धवरकूट जी (म.प्र.) में आपकी आर्यिका दीक्षा हुई। संघ में रहकर ही आप धर्म ध्यान और स्वाध्यायरत रहती हैं।

आर्यिका देशनामती माताजी

ब्रा.ब्र. उषा जी का जन्म 11 मार्च 1959 (म.प्र.) में हुआ। आपके पिता श्री कमलचंद एवं माता श्रीमती शांति देवी थी। आपने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। धार्मिक भावना से ओत-प्रोत रहने वाली उषा जी ने श्री विद्यासागर जी महाराज से सिद्धवरकूट जी में ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट जी में 14 अक्टूबर 2016 आषोज शुक्ल 13 को आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आर्यिका देशनामती माताजी बनीं। आपकी विशेष रुचि निरंतर ध्यान, अध्ययन में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति प्रसून

मानव पर्याय में जीवन तीन भागों में बॉटा जा सकता है। बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा। परमात्म अवस्था आत्मा की अखण्ड और शुद्ध अवस्था है। जब मानव बहिरात्म भाव को त्याग करके आत्मचिंतन में लीन रहकर अपनी ही आत्मा के परमात्म स्वरूप का चिंतन करता है और तदरूप आचरण करने लगता है वही मोक्ष मार्ग का पथिक है। मोक्ष मार्ग पर लगी हुई नारी पर्याय का उत्कृष्ट पद आर्यिका पद है। प्रस्तुत कृति में कर्म युग के प्रारम्भ में भगवान आदिनाथ के समवशरण में दीक्षित आर्यिका ब्रम्ही सुन्दिरी से लेकर भगवान महावीर के शासन काल में आर्यिका माताएँ जी हुई । उनमें से प्रमुख का योगदान संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है भगवान महावीर के शासन काल में चतुर्विध संघ विद्धमान रहा आर्यिकाएँ आचार्यों एवं गणिनी आर्यिकाओं के संघ में रहती थीं उनके द्वारा जैन संस्कृति में बराबर योगदान मिलता रहा अपभ्रंश प्राकृत संस्कृत, आदि भाषाओं के ग्रंथों का स्वाध्याय करती थीं अनेक पुराण ग्रन्थों की प्रतिलिपि करवाने की प्रेरणा देती थी प्रायः प्रादेशिक भाषा में साहित्य सृजन कर जैन सरस्वती भण्डार को समृद्ध किया।

मैने बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा के पांचों पट्टाचार्य आचार्य भगवन्तों द्वारा दीक्षित आर्यिका माता जी का जीवन परिचय एवं योगदान रेखांकित करने का अल्प प्रयास किया है। अन्य आचार्य भगवन्तों एवं गणिनी आर्यिका माता जी द्वारा दीक्षित सभी आर्यिकाओं ने अपने त्यागी जीवन में बहुत धर्म प्रभावना करी और इनमें से अधिकांश आर्यिकाओं जी ने साहित्य संवर्धन और समाज के हर वर्ग को संस्कारित करने का प्रयास किया है। मां जिनवाणी की चारों अनुयोगों की ग्रंथ रचना, प्राचीन आचार्य प्रणीत ग्रंथों की टीका, विधान, स्त्रोत विनती की रचना कर रही हैं तीर्थ क्षेत्रों का रक्षण संवर्धन एवं नये तीर्थ निर्माण में प्रेरणा दे रही हैं सभी आर्यिकाओं का गुणनुवाद करने की भावना रखती हूँ। सभी समग्र आर्यिका संघ के चरणों में भक्ति प्रसून समर्पित करते हुए अपनी लेखनी को विराम देती हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदर्भ सूची

1. जैन दर्शन - डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, प्रकाशक श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी.
2. जैन धर्म - सिद्धांताचार्य श्री कैलाशचंद्र शास्त्री, वाराणसी.
3. मानवता की धुरी - श्री नीरज जैन, मनीषा ट्रस्ट, शांति सदन, सतना.
4. बारह भावना - लेखक-नीरज जैन प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
5. इष्टोपदेश - आचार्य पूजयपाद स्वामी.
6. जैन बोधक पत्रिका - वर्ष 6 अंक 10 अक्टूबर 2008 प्रकाशिका - शरयू दफ्तरी द्वारा धर्मवीर राव जी सखाराम दोषी स्मारक संघ गिरगाँव, मुंबई.
7. संस्कारोदय भाग-3 प्रकाशक धर्मोदय परीक्षा बोर्ड सागर, मध्यप्रदेश.
8. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि - डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली.
9. आदि पुराण में प्रतिपादित भारत - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी.
10. उत्तर पुराण - आचार्य गुणभद्रकृत संपादक एवं अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य ज्ञानपीठ मूर्ति देवी जैन ग्रंथमाला भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली.
11. तिलोयपण्णिति द्वितीय खण्ड - आचार्य यति वृषभ प्रणीत, भाषा टीका आर्यिका 105 विशुद्धमती माताजी - संपादन डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी जोधपुर, प्रकाशक श्री भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभा.
12. पाण्डवपुराण.
13. प्रमुख ऐतिहासिक - जैन पुरुष और महिलायें - डॉ. ज्योति प्रसाद जैन.

13ए. स्वतंत्रता संग्राम में जैन - डॉ. कपूरचंद जैन, ज्योति जैन प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर.

14. आर्यिका अर्यिका है - लेखिका आर्यिका विशुद्धमती माताजी, प्रकाशक आचार्य शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, शांतिवीर नगर श्री महावीरजी (राजस्थान).
15. आर्ष परंपार में आर्यिका दीक्षा - सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी, प्रकाशक कुंद कुंद भारती नई.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

17. पद्मपुराण - संपादक एवं अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वितीय संस्करण.

17ए. आदि पुराण भाग 1 - आचार्य जिनसेन कृत संपादक एवं अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ छठा संस्करण 1998.

18. हरिवंशपुराण - संपादक एवं अनुवादक डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वितीय संस्करण.

19. श्री श्रीपाल चरित्र - श्रीमन्नेमिचंद्राचार्य.

20. आराधना कथा कोष. दिल्ली.

21. दिगम्बर जैन साधु परिचय - लेखक एवं संपादक ब्र. पं. धर्मचंद्र जी शास्त्री ज्योतिषाचार्य संघस्थ - आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज प्रकाशक - धर्मश्रुत ग्रन्थ माला.

22. पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती - अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रकाशक - श्री राजकुमार सेठी, प्रकाशक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा प्रकाशन विभाग डीमापुर

23. गणिनी आर्यिका 105 श्री ज्ञानमती : गौरव ग्रन्थ प्रकाशक - दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संसाधन जम्बूद्वीप हस्तिनापुर, मेरठ (उ. प्र.).

24. चारित्र चन्द्रिका - लेखिका प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामति माताजी,प्रकाशक दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर, मेरठ (उ. प्र.).

25. सम्यकज्ञान पत्रिका वर्ष 39 सितम्बर 2012 अंक 3 प्रकशक दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान जम्बूद्वीप हस्तिनापुर.

26. गणिनी आर्यिका श्री 105 सुपार्श्वमती माताजी, विनयांजलि विशेषांक, जैन गजट वर्ष 16 लखनऊ, अंक 52.

27. पूज्य आर्यिका, 105 श्री विशुद्धमती माताजी का जीवन परिचय-नीरज जैन, मनीशा ट्रस्ट, शांति सदन, सतना

28. आर्यिका श्री 105 विशुद्धमती - व्यक्तित्व एवं कर्तित्व शोध ग्रन्थ डॉ. मीनू जैन उदयपुर विश्व विद्यालय, राजस्थान.

29. संत-सौरभ, लेखक श्री नीरज जैन प्रकाशक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा द्वारा शताब्दी महोत्सव वर्ष में प्रकाशित.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुषमा जैन

जन्म - 8.12.1950, जबलपुर (म.प्र.)
शिक्षा - एम. ए., समाजशास्त्र

धार्मिक अध्ययन - मुनि 108 श्री क्षमासागरजी एवं आर्यिका 105 श्री विशुद्धमती माताजी के सान्निध्य में धर्म ग्रंथों का अध्ययन।

जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य में गहन अभिरुचि, जैन विधाओं एवं सामयिक विषयों पर लेखन । संतों के चरण सान्निध्य की आकांक्षा तथा समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु प्रयासरत। मूर्धन्य विद्वान एवं पुरातत्वविद् पिता स्व. नीरजजी से प्राप्त संस्कारों से सिंचित सादगीपूर्ण जीवन, कुशल वक्ता एवं प्रभावक प्रवचनकार के रूप में पहचान । मंच संचालन में रुचि। जीवन साथी डॉ. हरिश्चन्द्र जैन की प्रेरणा एवं सहयोग से सन् 2005 से श्री वर्धमान दिगम्बर जैन पाठशाला (भिलाई छत्तीसगढ़) का संचालन एवं अध्यापन सतत् जारी।

"सृजन"
सड़क-3, प्रगति नगर, रिसाली
भिलाई (छ.ग.) - 490006.
मोबाइल- 07587880546

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटेश्वर भगवान श्री बाहुबली स्वामी

महामस्तकाभिषेक महोत्सव २018

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi